एक
अभागी 'माँ'

गीतांजलि उइके

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Geetanjali Uikey 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7310-361-7

Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: April 2026

एक अभागी माँ

यह कोई कहानी नहीं है।
यह यादें हैं — जिन्हें भुलाया नहीं जा सका।
आज के माहौल में जब मैं देखती हूँ कि लोग जानवरों से नफ़रत करने लगे हैं और कुत्तों को शहर से बेदख़ल कर कहीं दूर किसी वीरान जगह छोड़ आते हैं, तब मेरी पुरानी यादें अपने आप लौट आती हैं।
जिनमें उन कुत्तों की यादें शामिल थीं,
जिन्हें वक़्त ने बार-बार परखा।
आज उन्हीं यादों को शब्दों में ढालते हुए
मैं यह सब आपसे साझा कर रही हूँ—
एक ऐसी रचना,
जो किसी कल्पना से नहीं,
बल्कि एक सत्य घटना पर आधारित है।
यह कितने शब्द का हुआ मैं पूछ रही हूं

बारिश के मौसम में, जहाँ लोगों का रहने का ठिकाना नहीं होता, वहाँ अक्सर अपने पालतू कुत्तों को रास्तों पर छोड़कर चले जाते हैं। लोग कितने ही निर्दयी हो सकते हैं। कुछ ऐसा ही हुआ हमारे मोहल्ले में, जब एक Indian breed की कुतिया आई। पहले तो मैंने उसे अनदेखा किया, क्योंकि मुझे लगा कि यह कोई चलती-फिरती कुतिया है। अक्सर मेरे साथ ऐसा होता था कि जितने भी कुत्तों को मैं खाना खिलाती, कुछ समय बाद वे अपने-अपने ठिकानों पर लौट जाते।
अगस्त का महीना था।
जानवर भी वैसे ही अपने-अपने आश्रय ढूँढ़ते हैं—किसी पेड़ के नीचे, किसी छत के नीचे या किसी छोटी-सी जगह में। और उसी तरह, भूरी, जिसके बारे में मैं आपको बता रही हूँ, हमारी बिल्डिंग के सीढ़ियों के नीचे बैठ गई। हमें और बाकी लोगों को इस बात का अंदाजा तक नहीं था कि वह कुतिया अब बिल्डिंग को ही अपना घर मानने लगी थी।

कुछ समय तक वह यूँ ही रहती रही और आस-पास के लोगों का दिया हुआ खाना भी खाती थी। मैं दूसरे फ्लोर में रहती थी, इसलिए उसका मेरे पास आना-जाना ज्यादा नहीं होता था। लेकिन धीरे-धीरे, जब मैंने उसे अपना बना लिया, तो यह मेरी दैनिक दिनचर्या का हिस्सा बन गया कि मुझे उसे खाना देना है। इसके बारे में आप आगे इस पुस्तक में और जानेंगे।

ऐसे ही एक महीना गुजर गया और हमें पता ही नहीं चला कि वह उसी बिल्डिंग में रहने लगी। मैं देखती तो थी कि मोहल्ले में कोई कुत्ता घूम रहा है, लेकिन कहाँ से आया, किसका है, यह समझ नहीं आता था।

कुछ समय बाद, जब हम गाँव गए—दो-तीन दिन के लिए—और लौटे, तो वही कुत्ता हमारे गाड़ी के पास आकर खड़ी हो गई। उसने हमें देखते ही दौड़ लगाई, जैसे हम उसके वर्षों पुराने साथी हों।

जैसे ही मैंने उसे देखा, मुझे ऐसा लगा कि वह कई सालों से इस मोहल्ले में रह रही हो।

उसका व्यवहार ऐसा था जैसे वह पहले से किसी की पालतू हो—बहुत ही मिलनसार और बात मानने वाली डॉगी।

वैसे मैं हर कुत्ते को देखकर थोड़ा टॉमी टॉमी रहती हूँ, तो मैंने उसे भी ‘‘टॉमी टॉमी’’ कहकर बुलाया।

मेरे पास कुछ बिस्किट पड़ी थी, तो मैंने उसे दे दिया।

फिर मैं अपने कमरे में चली गई।

अब हो चुकी थी शुरुआत—बालकनी से झाँक कर देखना, कि वह सकुशल है।

मन में एक चिंता रहती थी कि कोई है, जिसके लिए मुझे खाना रखना है, पानी देना है।

भले ही मेरा खुद का छोटा बच्चा था, मुझे लगता था कि अब यह जिम्मेदारी मुझे ही दी गई है—इस डॉगी का भी ख्याल रखना।

मैं अक्सर उसे मोहल्ले में देखती। वह बाकी कुत्तों को दौड़ाती रहती थी, और अब उसने मोहल्ले की सीमा को अपना घर मान लिया था।

जो कुत्ते उसकी सीमा में आते, वह उन्हें बिल्कुल पास नहीं आने देती थी, ताकि उनकी जान को कोई खतरा न हो।

दिन भर वह चौकस रहती, और धीरे-धीरे उसकी हलचल बिल्डिंग के नीचे लोगों को भी सुनाई देने लगी थी।
लोग महसूस करने लगे थे कि कोई है, जो अब इस बिल्डिंग का हिस्सा बन चुका है।

रोज़ के हल्ला-शोर से यह साफ़ समझ आ रहा था कि भूरी अब एक तरह से मोहल्ले की डॉग केयरटेकर बन चुकी थी।
वह धीरे-धीरे सबको पहचानने लगी थी, और थोड़ी डरती भी थी—क्योंकि उसे पता था कि लोग उसके साथ कैसा व्यवहार कर सकते हैं।
जैसा मैंने पहले बताया, वह मुझे पहले से ही ट्रेंड डॉगी लग रही थी।
लेकिन हम उसे कभी चोट नहीं पहुँचाते थे, और न ही बिल्डिंग के बाकी लोग।
उसे देखकर ऐसा लगता था जैसे वह कई सालों से बिल्डिंग में रह रही हो और उसकी रखवाली कर रही हो।
पर ऐसा बिल्कुल नहीं था। किसी ने उसे मोहल्ले में छोड़ दिया था, और अब वह धीरे-धीरे हमारी चहेती बन गई थी।

क्योंकि भूरी ऊपर नहीं आ सकती थी, और ना ही वह आना चाहती थी, वह अपने नए परिवार के पास ही रहना पसंद करती थी।
जी हाँ, हमारे ग्राउंड फ्लोर में रहने वाली आंटी के घर में वह रहने लगी।
आंटी और बाकी लोगों ने उसका नाम रखा—भूरी।
मैं उसे ऊपर फ्लोर में बुलाती रहती थी, लेकिन वह नहीं आती थी।
उसके पीछे एक राज़ था, और यह राज़ आपको आगे इस पुस्तक में पता चलेगा।

कई बार बुलाने पर भी भूरी नहीं आई।
फिर मुझे खाना लेकर वापस वही जाना पड़ता—अपनी रोज़मर्रा की रूटीन में।
जैसे कि मैं हमेशा करती थी, बिल्डिंग के सेकंड फ्लोर से नीचे सड़क पर और सड़क किनारे, मैं उसे कटोरे में खाना और पानी दिया करती थी।
भूरी आंटी के घर पर रहती थी, लेकिन बाहर घूमना भी उसे पसंद था।
उसकी कोई फिक्स जगह नहीं थी—कभी सड़क किनारे, कभी पेड़ के नीचे बैठना अच्छा लगता था।
खाना और पानी की कमी उसे कभी महसूस नहीं हुई, क्योंकि हम दोनों घरों ने उसका पूरा इंतज़ाम कर रखा था।

एक-दो बार मैंने भूरी को आंटी के घर में भी देखा, तो वह आराम से सोई रहती थी। कभी-कभी घूमने भी चली जाती थी।
जैसा मैंने पहले बताया, वह बहुत निडर थी। बाकी कुत्तों से उसे डर नहीं लगता था। बहुत मजबूत और ताकतवर थी, और अपने भाई-बहनों के साथ कभी-कभी हिंसक भी होती थी, लेकिन लोगों को कुछ नहीं करती थी। शायद इसलिए उसे सभी प्यार करते थे।
फिर मैंने देखा कि मोहल्ले में अन्य कुत्ते भी आने लगे, जिन्हें भूरी नहीं आने देती थी। तो मैंने मिट्टी के बर्तन रख दिए, पानी भरकर।
कभी-कभी खाना भी ज्यादा क्वांटिटी में लेकर जाती, ताकि अन्य कुत्ते भी खा सकें।

कुछ दिनों बाद मैंने देखा कि भूरी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी।
मोहल्ले में हर जगह देखा, लेकिन वह नहीं दिखी।
तब मुझे समझ आया कि शायद वह आंटी के घर हो सकती है।
मैं वहां गई और देखा कि आंटी ने उसका एक छोटा सा कोना बना दिया था, जिसमें एक छोटा बेड रखा गया था।
वह वहीं बैठी थी।
तभी मुझे पता चला कि वह गर्भवती थी।
पिछले पाठ में मैंने बताया था कि वह ऊपर फ्लोर क्यों नहीं आ रही थी—तो यही कारण था।
बहुत ही समझदार और सोच-विचार वाली भूरी अपने और पेट में पलने वाले बच्चों के लिए सतर्क थी।
मैंने भी उसे परेशान नहीं किया, बस खाना देती रही।
वैक्सीनेशन और जरूरी मेडिकल काम मैं डॉक्टर से करवा रही थी, जो संभव था।
उसका व्यवहार बहुत शालीन और शांत था, इसलिए धीरे-धीरे वह सभी की चाहती बन गई थी।

जब किसी भी जीव को बच्चे होते हैं, तो उसकी भूख बढ़ जाती है और उसका ख्याल रखना ज़रूरी होता है।
वैसे ही हमने भूरी का ख्याल रखा। हमने उसे प्रॉपर डाइट दी, खाना खिलाया, और वह स्वस्थ हो गई।
धीरे-धीरे वह अपने बच्चों के साथ खेलती, उनका ख्याल रखती और समय बिताती।

बच्चे एक महीने के हो गए। चूंकि वे बहुत छोटे थे, उन्हें समझ नहीं आता था कि किस तरफ जाना है और किस तरफ नहीं।
हमारी बिल्डिंग सड़क के किनारे थी, मोहल्ले की मुख्य रोड पर। कोई भी गाड़ी अगर गुजरती, तो बच्चों को बहुत सावधानी से बचाना पड़ता था।
भूरी हमेशा सावधानी रखती और अपने बच्चों का भी ख्याल रखती।
इस दौरान मोहल्ले में कई अन्य कुत्ते भी आ गए।
भूरी अपने पिल्लों को बाकी कुत्तों से बचाती और जब ज़रूरत पड़ती, लड़ाई भी करती।
बच्चे इतने छोटे थे कि अक्सर गिरते-पढ़ते रहते थे।
इसलिए हमने उनके लिए एक बड़ा सा कार्टून बॉक्स लेकर उनके लिए घर बना दिया।

पिल्ले कार्टून बॉक्स के अंदर भी रहने लगे, लेकिन समस्या यह थी कि अगर किसी ने ध्यान नहीं दिया, तो वे सड़क पर आ जाते थे।
उन्हें नीचे रहना पड़ा।
कुछ समय तक वे बहुत अच्छे रहे, लेकिन अचानक, पता नहीं क्या हुआ, एक-एक करके वे मरने लगे।
कोई एक्सीडेंट में, कोई बिमारी से।
जब मैंने उन्हें मृत पाया, तो भूरी पूरी तरह टूट चुकी थी।
वह रोने लगी।
अगले दिन, जब मैंने उन्हें दफनाने के लिए कुछ लोग बुलाए, भूरी अपने मृत बच्चों को जाने ही नहीं देती थी।
दूर-दूर तक दौड़ती रही, बहुत रोई, शांत नहीं हुई।
खाना भी नहीं खा रही थी।
और अब उसके पास उसके बच्चे नहीं थे—सभी मर चुके थे।

बच्चों के जाने के बाद भूरी बिल्कुल बदल गई। वह उसी जगह बैठी रहती, जहाँ कभी उसके पिल्ले खेला करते थे। उसकी आँखें हर आने-जाने वाले को ढूँढती थीं, जैसे अब भी उम्मीद हो कि शायद कोई बच्चा लौट आए। रातों को वह बिना वजह उठकर इधर-उधर घूमती, कभी-कभी हल्की-सी आवाज़ निकालती, मानो अपने बच्चों को पुकार रही हो। उसके चेहरे पर जो ममता और चंचलता हुआ करती थी, उसकी जगह अब एक गहरी ख़ामोशी ने ले ली थी।

मैं रोज़ उसके पास जाती, उसे सहलाती, खाना सामने रखती, लेकिन वह बहुत कम खाती थी। दर्द शब्दों का मोहताज नहीं होता—भूरी का दर्द उसकी आँखों में साफ़ दिखाई देता था। उस समय मुझे पहली बार महसूस हुआ कि माँ होना सिर्फ इंसानों का अनुभव नहीं है। मूक प्राणी भी उतना ही गहरा दुःख महसूस करते हैं, बस वे उसे कह नहीं पाते। भूरी का टूट जाना सिर्फ उसके बच्चों का खोना नहीं था, बल्कि हमारी व्यवस्था, हमारी बेरुख़ी और हमारी असंवेदनशीलता का आईना था।

उस दिन के बाद मैंने तय किया कि भूरी को अब अकेला महसूस नहीं होने दूँगी। मैं रोज़ कुछ देर उसके पास बैठती, उससे बातें करती, भले ही वह मेरे शब्द समझ नहीं पाती थी, लेकिन मेरे साथ होने का एहसास उसे थोड़ा सुकून देता था। धीरे-धीरे उसने मेरे हाथ से खाना लेना शुरू किया, हालाँकि उसकी आँखों की उदासी अभी भी वैसी ही थी।
समय अपनी गति से आगे बढ़ता रहा। कुछ महीनों बाद भूरी फिर से माँ बनने वाली थी। इस बार मेरे मन में एक अजीब-सी घबराहट थी—खुशी भी थी और डर भी। मैं हर दिन यही सोचती कि इस बार उसके बच्चों को हर हाल में बचाना है। मैंने उसके लिए सुरक्षित जगह ढूँढी, जहाँ ठंड और बारिश से बचाव हो सके, और आस-पास के लोगों से भी विनती की कि कोई उसे या उसके बच्चों को नुकसान न पहुँचाए।
भूरी शायद मेरे इस प्रयास को महसूस कर रही थी। अब वह पहले की तरह डरी-सहमी नहीं रहती थी, बल्कि मुझे देखते ही धीरे-धीरे पूँछ हिलाने लगी थी। उसकी आँखों में अभी भी बीते दुख की परछाईं थी, लेकिन कहीं न कहीं एक छोटी-सी उम्मीद भी जन्म ले चुकी थी—शायद इस बार उसकी ममता अधूरी नहीं रहेगी।

दिन बीतते गए और आखिर वह समय भी आ गया जब भूरी ने फिर से बच्चों को जन्म दिया। उस दिन मेरे मन में जितनी बेचैनी थी, उतनी ही दुआ भी थी कि इस बार सब कुछ ठीक रहे। मैंने सुबह-शाम जाकर उसे देखा, उसके पास पानी और खाना रखा और दूर से ही यह ध्यान रखा कि कोई उसे परेशान न करे।

कुछ ही दिनों में छोटे-छोटे पिल्लों की हल्की-हल्की आवाज़ें उस कोने में गूँजने लगीं। भूरी अब पहले से कहीं ज़्यादा सतर्क हो गई थी। कोई पास आता तो वह तुरंत बच्चों के सामने खड़ी हो जाती, लेकिन मुझे देखते ही उसका व्यवहार नरम हो जाता। जैसे उसे भरोसा हो गया था कि मैं उसके बच्चों को नुकसान नहीं पहुँचने दूँगी।

मैंने आसपास के कुछ लोगों की मदद से उस जगह को थोड़ा और सुरक्षित कर दिया—ऊपर तिरपाल लगवा दिया ताकि बारिश का पानी अंदर न आए, और पास में एक छोटा-सा डिब्बा रख दिया जिसमें हमेशा साफ पानी भरा रहता। धीरे-धीरे मोहल्ले के कुछ और लोग भी भूरी और उसके बच्चों के प्रति संवेदनशील होने लगे। कोई दूध रख जाता, कोई रोटी डाल जाता।

जब मैंने एक दिन देखा कि सभी पिल्ले स्वस्थ हैं और भूरी निश्चिंत होकर उन्हें दूध पिला रही है, तो मन में एक अजीब-सी शांति महसूस हुई। लगा जैसे इस बार उसकी ममता सच में सुरक्षित है। भूरी की आँखों में अब भी जीवन के पुराने घावों की हल्की-सी छाया थी, लेकिन उसके साथ-साथ एक नई चमक भी थी—अपने बच्चों को सुरक्षित देखकर मिलने वाली संतुष्टि की चमक।

सामने सड़क होने की वजह से मेरा डर हर दिन बढ़ता जा रहा था। जैसे-जैसे पिल्ले बड़े हो रहे थे, उनकी चंचलता भी बढ़ती जा रही थी। वे कभी एक-दूसरे के पीछे भागते, कभी खेलते-खेलते अचानक सड़क की ओर निकल जाते। मैं जितना संभालती, उतना ही मन में एक अनजाना डर बना रहता कि न जाने कब कौन-सा खतरा सामने आ जाए।

और वही हुआ जिसका डर था। कभी कोई पिल्ला अचानक बीमार पड़ जाता, तो कभी किसी गाड़ी की तेज़ रफ्तार उसकी मासूम दौड़ से टकरा जाती। हर बार जब कोई छोटा-सा शरीर घायल होता या चुप हो जाता, तो लगता जैसे भूरी के दिल का एक और टुकड़ा टूट गया हो। वह देर तक उनके पास बैठी रहती, उन्हें सूंघती, हल्की-हल्की आवाज़ में पुकारती, मानो अब भी उम्मीद कर रही हो कि वे उठकर उसके पास आ जाएँ।

मैं और आसपास के कुछ लोग मिलकर जितना कर सकते थे, करते रहे—कभी डॉक्टर के पास ले जाना, कभी दवा देना, कभी उन्हें सुरक्षित जगह पर रखने की कोशिश करना। लेकिन सड़क की ज़िंदगी इतनी आसान नहीं होती; वहाँ हर दिन एक नई परीक्षा सामने खड़ी रहती है।

इन घटनाओं ने मुझे बार-बार यह सोचने पर मजबूर किया कि केवल दया दिखाना काफी नहीं है, बल्कि सड़क के जानवरों के लिए स्थायी और सुरक्षित व्यवस्था होना कितना ज़रूरी है, ताकि कोई भी "भूरी" बार-बार अपनी ममता को यूँ बिखरते हुए न देखे।

भूरी की हालत अब पहले जैसी नहीं रही थी। लगातार अपने बच्चों को खोने का दर्द जैसे उसकी आंखों में स्थायी उदासी बनकर बस गया था। वह पहले की तरह दौड़ती-भागती तो थी, लेकिन उसकी आंखों की चमक कहीं खो चुकी थी। मैं जब भी उसे देखती, तो मन में एक अजीब-सी बेचैनी होती—जैसे वह कुछ कहना चाहती हो, लेकिन कह नहीं पा रही हो।

हमारे मोहल्ले में केवल भूरी ही नहीं थी, बल्कि कई और कुत्तियां थीं जिनकी कहानी लगभग एक-सी थी। कोई बीमारी से अपने बच्चों को खो देती, तो किसी के बच्चे सड़क दुर्घटना का शिकार हो जाते। सड़क के किनारे जन्म लेना और वहीं बड़ा होना, शायद उनके लिए सबसे बड़ा संघर्ष था। हर दिन उनके सामने एक नया खतरा खड़ा रहता—तेज रफ्तार गाड़ियां, भूख, बीमारी और लोगों की बेरुखी।

इन्हीं दिनों मेरी नजर मोहल्ले की एक और कुतिया पर पड़ी। वह दिखने में बहुत साधारण थी, लेकिन उसके स्वभाव में एक अलग ही मासूमियत थी। वह कभी किसी पर बिना वजह नहीं भौंकती थी, न ही किसी तरह का आक्रामक व्यवहार दिखाती थी। बच्चे उसके पास खेलते तो वह चुपचाप बैठकर उन्हें देखती रहती। कई बार लोग उसे दुलारते, तो वह धीरे-धीरे पूंछ हिलाकर मानो धन्यवाद कहती। उसके शांत स्वभाव ने मुझे उसके और करीब ला दिया।

कुछ समय बाद उसने भी बच्चों को जन्म दिया। उसके छोटे-छोटे पिल्ले जब चलना सीख रहे थे, तो उन्हें देखकर मन खुश हो जाता था। वे एक-दूसरे के पीछे भागते, गिरते-संभलते और फिर से खेलने लगते। उनकी मासूम हरकतें कुछ देर के लिए सारी चिंताएं भुला देती थीं। मैं अक्सर उनके लिए खाना और पानी रख देती, और वह कुतिया दूर खड़ी होकर मुझे देखती रहती, जैसे उसे भरोसा हो गया हो कि उसके बच्चों को अब कोई नुकसान नहीं होने दूंगी।

समय बीतता गया और पिल्ले लगभग दो महीने के हो गए। अब वे पहले से ज्यादा चंचल और तेज हो गए थे। यही वह समय था जब खतरे भी बढ़ जाते हैं, क्योंकि छोटे पिल्ले सड़क की रफ्तार और उसके जोखिम को समझ नहीं पाते। मैं जितना हो सकता था, उन्हें सड़क से दूर रखने की कोशिश करती, लेकिन हर समय उन पर नजर रखना संभव नहीं था।

एक दिन अचानक खबर मिली कि उसके एक पिल्ले को गाड़ी ने टक्कर मार दी है। जब मैं वहां पहुंची, तो वह छोटा-सा शरीर सड़क के किनारे पड़ा था और उसके आसपास कुछ लोग खड़े थे। उस दृश्य को देखकर मेरा दिल कांप उठा। तभी वह कुतिया दौड़ती हुई मेरे पास आई। उसकी आंखों में ऐसा दर्द था जिसे शब्दों में बयान करना मुश्किल है। वह बार-बार मेरे पास आकर रोने जैसी आवाज निकाल रही थी, फिर अपने बच्चे के पास जाकर उसे सूंघती और वापस मेरे पास आ जाती, जैसे मुझसे मदद मांग रही हो।

उस क्षण मुझे पहली बार इतनी गहराई से महसूस हुआ कि जानवर भी उतना ही दर्द महसूस करते हैं जितना हम इंसान करते हैं। उनके पास अपने दुख को शब्दों में कहने की क्षमता नहीं होती, लेकिन उनकी आंखें, उनकी आवाजें और उनका व्यवहार सब कुछ कह देते हैं। वह कुतिया मेरे पास आकर चुपचाप बैठ गई। उस दिन उसने खाना भी नहीं खाया। वह देर तक वहीं बैठी रही, जैसे उसे अब भी उम्मीद हो कि उसका बच्चा उठकर उसके साथ चल पड़ेगा।

मैंने उसे पानी दिया, खाना रखा, उसके सिर पर हाथ फेरा, लेकिन उसका ध्यान कहीं और ही था। उस दिन मेरे दिल में एक बात गहराई से बैठ गई—सड़क पर रहने वाले जानवरों का जीवन केवल भूख और प्यास से लड़ने तक सीमित नहीं है, बल्कि वे हर दिन भावनात्मक दर्द से भी गुजरते हैं। वे भी मां होते हैं, उनके भी सपने होते हैं, और जब उनके बच्चे उनसे छिन जाते हैं, तो उनका दिल भी उतना ही टूटता है जितना किसी इंसान का टूटता है।

धीरे-धीरे मैंने यह महसूस किया कि यह कहानी केवल भूरी की नहीं है, केवल उस एक कुतिया की भी नहीं है, बल्कि उन सभी "माओं" की है जो सड़क पर अपने बच्चों को खो देती हैं और फिर भी अगले दिन जीने की कोशिश करती हैं। शायद

प्रकृति ने उन्हें इतनी मजबूती दी है कि वे हर दर्द के बाद फिर से खड़ी हो जाती हैं, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें दर्द नहीं होता।

इन घटनाओं ने मेरे भीतर एक नया संकल्प जगा दिया। अब जब भी मुझे समय मिलता, मैं घर से निकलकर आसपास के इलाकों में जानवरों के लिए खाना और पानी रखने लगी। कई बार लोग पूछते कि इतनी मेहनत क्यों करती हो, लेकिन मेरे पास इसका एक ही जवाब होता—"अगर हम थोड़ा-सा समय और थोड़ा-सा दया भाव दे दें, तो किसी की जिंदगी थोड़ी आसान हो सकती है।"

कई बार मैं दिन में निकलती, तो कई बार रात में भी। कभी मोहल्ले की गलियों में, कभी बाजार के पास, तो कभी 15-20 किलोमीटर दूर तक भी चली जाती, जहां मुझे पता होता कि कुछ जानवर भूखे रहते हैं। रास्ते में मिलने वाले कई लोग मुझे पहचानने लगे थे। कुछ लोग मदद भी करने लगे—कोई पानी भर देता, कोई बचा हुआ खाना दे देता, तो कोई बस मुस्कुराकर हौसला बढ़ा देता।

धीरे-धीरे यह काम मेरे जीवन का एक हिस्सा बन गया। अब जब भी किसी कुतिया को उसके बच्चों के साथ देखती, तो मन में यही प्रार्थना करती कि इस बार उसके बच्चे सुरक्षित बड़े हो जाएं। हर बार ऐसा नहीं होता था, लेकिन हर छोटी-सी खुशी भी उम्मीद जगाने के लिए काफी होती थी।

कई बार ऐसा भी हुआ कि जिन जानवरों की मैं मदद करती थी, वे मुझे दूर से देखकर पहचान लेते थे। वे दौड़कर पास आते, पूंछ हिलाते और मेरे आसपास घूमने लगते। उस समय मुझे लगता कि शायद मैं उनके लिए कुछ बड़ा नहीं कर पा रही हूं, लेकिन उनके विश्वास ने मुझे यह एहसास दिलाया कि छोटी-सी मदद भी उनके लिए बहुत मायने रखती है।

भूरी हो, वह दूसरी कुतिया हो या मोहल्ले की कोई और मादा कुतिया—उन सबकी कहानियों ने मुझे एक बात सिखाई कि संवेदनशीलता केवल इंसानों तक सीमित नहीं है। जानवर भी उतने ही संवेदनशील होते हैं, बस उनका दर्द अक्सर हमारी नजरों से छिपा रह जाता है। अगर हम थोड़ा-सा रुककर उन्हें देखें, समझें और उनकी मदद करें, तो शायद उनके जीवन की कठिनाइयां कुछ कम हो सकती हैं।

आज भी जब मैं उन गलियों से गुजरती हूं, तो कई चेहरे बदल चुके हैं—कुछ पुराने साथी अब दिखाई नहीं देते, कुछ नए छोटे-छोटे पिल्ले नजर आने लगते हैं। जीवन का यह चक्र चलता रहता है, लेकिन हर बार एक ही इच्छा मन में उठती है—काश इन सड़क पर रहने वाले जानवरों के लिए भी कोई सुरक्षित व्यवस्था हो, जहां वे बिना डर के जी सकें और कोई भी "भूरी" या कोई भी मां अपने बच्चों को बार-बार यूं खोने का दर्द न झेले।

शायद मैं अकेले पूरी दुनिया नहीं बदल सकती, लेकिन अगर मेरी छोटी-सी कोशिश किसी एक जानवर को भी एक वक्त का खाना, एक कटोरी पानी या थोड़ी-सी सुरक्षा दे सके, तो मुझे लगता है कि मेरी मेहनत सफल है। यही सोच मुझे हर दिन फिर से बाहर निकलने की ताकत देती है—क्योंकि कहीं न कहीं कोई भूखा, प्यासा या डरा हुआ जानवर मेरी राह देख रहा होता है।

इन घटनाओं को देखने के बाद मैं पूरी तरह समझ चुकी थी कि केवल दुखी होकर बैठ जाना समाधान नहीं है; कुछ ठोस करना जरूरी है। इसी सोच ने मेरे भीतर एक नई शुरुआत की चिंगारी जगाई और वहीं से "मददगार पहल" की शुरुआत हुई। शुरुआत छोटी थी—बस अपने स्तर पर खाना, पानी और जरूरत पड़ने पर इलाज की व्यवस्था करना—लेकिन धीरे-धीरे यह एक जिम्मेदारी बनती चली गई।

शुरुआत में जब मैंने लोगों से मदद और दान माँगना शुरू किया, तो हर किसी ने तुरंत विश्वास नहीं किया। कुछ लोग सवाल करते, कुछ लोग चुपचाप देखते रहते, और कुछ लोग मदद करने से हिचकते भी थे। मुझे यह बात समझ में आती थी, क्योंकि आज के समय में भरोसा करना आसान नहीं है। ऐसे समय में मेरे पति ने मेरा सबसे बड़ा सहारा बनकर मेरा साथ दिया। उन्होंने न केवल मुझे मानसिक रूप से मजबूत किया, बल्कि हर कदम पर सहयोग भी दिया—कभी सामान लाने में, कभी खाना बनवाने में, तो कभी जरूरतमंद जानवरों को डॉक्टर तक पहुँचाने में।

धीरे-धीरे मैंने मोहल्ले और आसपास के इलाकों में पानी के बर्तन रखने शुरू किए, ताकि गर्मी के दिनों में कोई जानवर प्यासा न रहे। जहां भी मेरी नजर पहुँच सकती थी, वहाँ तक मैं खाना पहुँचाने की कोशिश करती। अगर किसी जानवर को चोट

लगी होती या वह बीमार दिखाई देता, तो उसे इलाज दिलाने का प्रयास करती। इस सेवा में केवल कुत्ते ही नहीं थे, बल्कि गाय, बैल, घोड़े और पक्षी भी शामिल थे। मुझे लगता था कि दर्द किसी एक प्रजाति का नहीं होता, इसलिए मदद भी सीमित नहीं होनी चाहिए।

धीरे-धीरे मेरे जीवन को जैसे एक नया उद्देश्य मिल गया। अब मेरा दिन इन्हें खाना देने से शुरू होता और इन्हीं की देखभाल करते-करते समाप्त होता। मोहल्ले के कई कुत्ते मुझे पहचानने लगे थे। जैसे ही मैं गली में प्रवेश करती, वे दूर से ही पूंछ हिलाते हुए मेरी ओर दौड़ पड़ते। कुछ लोग इस दृश्य को देखकर मुस्कुराते, तो कुछ हैरान भी होते थे कि जानवर इतने करीब कैसे आ जाते हैं।

शायद लोगों को यह अजीब लगे, लेकिन मैं उनसे बातें भी करती थी। मैं उनसे पूछती—“आज ठीक हो न?”, “खाना खाया या नहीं?”, “कहीं चोट तो नहीं लगी?”—और भले ही वे शब्दों में जवाब नहीं देते थे, लेकिन उनकी आंखें और उनका व्यवहार सब कुछ कह देता था। कई बार जब कोई कुत्ता उदास होता, तो वह मेरे पास आकर चुपचाप बैठ जाता, जैसे अपने मन की बात कह रहा हो। उस समय मुझे सचमुच महसूस होता कि भावनाओं की भाषा शब्दों से कहीं बड़ी होती है।

कभी-कभी लोग मुझे देखकर कहते—“जानवरों से इतनी बातें क्यों करती हो, लोग तो तुम्हें पागल समझेंगे।” तब मैं मुस्कुराकर कहती, “अगर बेज़ुबानों की भावनाओं को समझना पागलपन है, तो मुझे यह पागलपन मंजूर है।” सच कहूँ तो आज मुझे इस बात पर गर्व होता है कि मैंने उन आवाजों को सुनना सीखा, जिन्हें अक्सर दुनिया अनसुना कर देती है।

“मददगार पहल” केवल जानवरों तक ही सीमित नहीं रही। सड़क पर रहने वाले कई बेसहारा लोगों को देखकर भी मन दुखी हो जाता था। इसलिए मैंने जितना संभव हुआ, उनकी मदद भी शुरू की—कभी किसी को खाना देना, कभी पानी की व्यवस्था करना, कभी जरूरत पड़ने पर कुछ पैसे देना, तो कभी किसी छोटी दुकान या काम पर उन्हें लगवाने की कोशिश करना। कई बार ऐसा भी हुआ कि कोई व्यक्ति

अपने घर जाना चाहता था, लेकिन उसके पास किराए के पैसे नहीं थे; तब मैंने टिकट के पैसे देकर उसे उसके घर पहुँचाने में मदद की।

कभी-कभी किसी जरूरतमंद को अस्थायी रूप से रहने की जगह दिलवाने की कोशिश भी की। मैं यह सब अकेले नहीं कर सकती थी, लेकिन धीरे-धीरे कुछ अच्छे लोग भी इस पहल से जुड़ते चले गए। किसी ने खाने का सामान दे दिया, किसी ने दवाइयाँ दे दीं, तो किसी ने बस इतना कहा—"जब भी जरूरत हो, बता देना।" यही छोटे-छोटे सहयोग इस काम को आगे बढ़ाने की ताकत बनते गए।

आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो लगता है कि यह सब उन मर्मिक घटनाओं का परिणाम है जिन्हें मैंने अपनी आँखों से देखा। अगर वे दर्दनाक दृश्य मैंने न देखे होते, तो शायद मेरे भीतर यह संकल्प भी पैदा न होता। अब मुझे लगता है कि जब शुरुआत हो ही चुकी है, तो इसे अधूरा क्यों छोड़ा जाए। इसलिए मैंने मन ही मन तय कर लिया कि जितना संभव होगा, अपना जीवन इन बेज़ुबानों और जरूरतमंद लोगों की सेवा के लिए समर्पित करती रहूँगी।

यह रास्ता आसान नहीं है—कभी थकान होती है, कभी संसाधनों की कमी होती है, कभी लोगों की आलोचना भी सुननी पड़ती है—लेकिन जब कोई भूखा जानवर खाना खाकर संतुष्ट होकर बैठ जाता है, या कोई जरूरतमंद व्यक्ति मुस्कुराकर "धन्यवाद" कहता है, तो सारी मुश्किलें छोटी लगने लगती हैं। तब मन में यही विश्वास और मजबूत हो जाता है कि सही दिशा में उठाया गया छोटा-सा कदम भी किसी की जिंदगी में बड़ा बदलाव ला सकता है।

लेकिन इसके साथ-साथ भूरी की कहानी भी आगे बढ़ रही थी—एक ऐसी कहानी, जिसमें दर्द, बदलाव और ममता के कई रंग शामिल थे।

भूरी पहले बहुत गुस्सैल स्वभाव की थी। वह अपने इलाके में आने वाले दूसरे कुत्तों पर तुरंत भौंकती और उन्हें पास नहीं आने देती थी। उसे जैसे अपने छोटे-से क्षेत्र की रानी होने का अहसास था। लेकिन जब उसने अपने बच्चों को खोया, तो उसके स्वभाव में धीरे-धीरे एक बड़ा बदलाव आने लगा। उसका गुस्सा कम होने लगा और

वह पहले की तुलना में काफी शांत और नरम हो गई। अब वह कई बार दूसरे कुत्तों के साथ बैठती, उनके साथ खेलती और बिना वजह किसी पर भौंकती भी नहीं थी।

उसे इस तरह बदलते हुए देखना मेरे लिए भी सुकून देने वाला था। मुझे लगता था कि शायद वह अपने दर्द को धीरे-धीरे भूलकर जीवन को फिर से अपनाने की कोशिश कर रही है। वह समय पर खाना खाती, पानी पीती, आसपास घूमती और कई बार हमारे बिल्डिंग के लोगों के पास भी आकर बैठ जाती। अब वह सचमुच हमारे परिवार का हिस्सा बन चुकी थी। पहले जब कोई दूसरा जानवर बिल्डिंग के नीचे आ जाता था, तो वह उसे आने नहीं देती थी, लेकिन अब हमने उसे धीरे-धीरे समझाना और कुछ आसान कमांड्स सिखाना शुरू किया। आश्चर्य की बात यह थी कि उसने उन्हें बहुत जल्दी सीख भी लिया, बिल्कुल किसी पालतू जानवर की तरह।

कुछ समय बाद वह फिर से माँ बनने वाली थी। इस बार हमने तय किया कि हम पहले से ज्यादा सावधानी रखेंगे, ताकि उसके बच्चों को सुरक्षित रखा जा सके। हमने उनके रहने के लिए एक सुरक्षित कोना तैयार किया, खाने-पीने की व्यवस्था की और कोशिश की कि आसपास कोई खतरा न हो। बच्चे जन्मे तो सब बहुत खुश हुए। छोटे-छोटे पिल्लों को देखकर मन में उम्मीद जागी कि शायद इस बार सब कुछ ठीक रहेगा।

शुरुआत में सब ठीक भी रहा। पिल्ले स्वस्थ थे और धीरे-धीरे बड़े होने लगे। लेकिन सड़क की जिंदगी में खतरे केवल गाड़ियों से ही नहीं होते; कई बार दूसरे कुत्तों के झुंड भी हमला कर देते हैं। एक दिन ऐसा ही हुआ। आसपास के कुछ आवारा कुत्तों के झुंड ने अचानक हमला कर दिया। भूरी अपने बच्चों को बचाने के लिए पूरी ताकत से लड़ पड़ी। वह बहुत बहादुरी से उनके सामने खड़ी रही, लेकिन झुंड बड़ा था और उस संघर्ष में उसका एक पिल्ला मारा गया।

उस दिन का दृश्य बहुत दर्दनाक था। भूरी घायल थी, लेकिन फिर भी अपने बच्चों के पास बैठी रही। उसकी आंखों में दर्द के साथ-साथ एक अजीब-सी बेचैनी भी थी, जैसे वह अपने बच्चे को बचा न पाने का दुख महसूस कर रही हो। कई दिनों तक वह उन कुत्तों के आसपास घूमती रही, मानो उन्हें पहचानने की कोशिश कर रही हो। लगभग एक सप्ताह बाद उसने अचानक उन पर हमला कर दिया। उस दिन काफी देर

तक कुत्तों के भौंकने और लड़ने की आवाजें आती रहीं। जब वह वापस लौटी, तो खुद भी घायल थी, लेकिन उसके मुंह पर खून लगा हुआ था। बिल्डिंग के लोगों ने समझ लिया कि वह अपने बच्चे का बदला लेकर आई है।

उस घटना ने मुझे फिर से यह सोचने पर मजबूर कर दिया कि जानवरों में भी भावनाएं कितनी गहरी होती हैं। वे अपने दुख, गुस्से और प्रेम को अपने तरीके से व्यक्त करते हैं। अगर हम उनकी आंखों में ध्यान से देखें, तो बहुत कुछ समझ सकते हैं। इसलिए मैं हमेशा लोगों से कहती हूं कि हर कुत्ते को पत्थर मारना या डराकर भगाना सही नहीं है। कई बार इंसानों का यही व्यवहार उन्हें आक्रामक बना देता है। हर कुत्ता एक जैसा नहीं होता—कुछ आक्रामक होते हैं, तो कुछ बेहद शांत और प्रेम करने वाले होते हैं; जरूरत केवल उन्हें समझने की है।

भूरी इंसानों पर कभी हमला नहीं करती थी। उसका गुस्सा केवल बाहरी कुत्तों के लिए था, क्योंकि उसने अपने बच्चों को खोया था और वह फिर से किसी खतरे को पास नहीं आने देना चाहती थी। वह दूर से ही भौंककर दूसरे कुत्तों को भगा देती, ताकि वे उसके इलाके में न आएं।

कुछ समय तक उसके बाकी बच्चे ठीक रहे, लेकिन धीरे-धीरे फिर वही दुखद घटनाएं होने लगीं। एक दिन उसका एक पिल्ला सड़क के किनारे मृत पाया गया। समझ नहीं आ रहा था कि उसे क्या हुआ—न तो कोई दुर्घटना हुई थी और न ही कोई बाहरी चोट दिख रही थी। जब हमने उसे दफनाने के लिए लोगों को बुलाया, तो भूरी अपने बच्चे को ले जाने नहीं दे रही थी। वह जोर-जोर से रोने जैसी आवाज निकाल रही थी और गाड़ी के पीछे-पीछे भागने लगी, मानो कह रही हो कि उसका बच्चा उससे दूर न किया जाए।

उसे संभालना उस समय बहुत कठिन था। बड़ी मुश्किल से उसे शांत किया गया और फिर उसके बच्चे को दफनाया गया। उस घटना के बाद दो-तीन दिन तक उसने ठीक से खाना नहीं खाया और न ही पानी पिया। वह चुपचाप एक कोने में बैठी रहती, किसी पर भौंकती भी नहीं थी। उसे देखकर साफ महसूस होता था कि वह फिर से उसी दर्द से गुजर रही है, जिसे वह कई बार झेल चुकी थी।

उस समय मुझे बार-बार यही लगता था कि काश सड़क पर रहने वाले इन जानवरों के लिए कोई सुरक्षित जगह होती, जहां वे बिना डर के अपने बच्चों को पाल सकते। लेकिन जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं होती, तब तक हम जैसे लोगों की छोटी-छोटी कोशिशें ही उनके लिए सहारा बन सकती हैं। शायद यही कारण था कि भूरी की हर पीड़ा मुझे और मजबूत बनाती जा रही थी, और हर घटना मुझे यह याद दिलाती थी कि मेरी "मददगार पहल" केवल एक काम नहीं, बल्कि एक जिम्मेदारी है, जिसे मुझे हर हाल में निभाते रहना है।

मैं दूसरे फ्लोर पर रहती थी, इसलिए वहां से भूरी और उसके बच्चों पर नजर रखना मेरी रोज़मर्रा की ज़िम्मेदारी बन गई थी। कोशिश यही रहती थी कि उन्हें हर समय सुरक्षित और खुश रखा जाए, लेकिन मेरी तबियत अक्सर ठीक नहीं रहती थी। कई बार मैं इतना थक जाती कि समय पर खाना या पानी देना भी संभव नहीं होता था। ऐसे समय में मैं मोहल्ले के कुछ अच्छे लोगों से निवेदन करती थी कि वे थोड़ा खाना या पानी पहुंचा दें, ताकि जानवरों को भूख और प्यास से राहत मिल सके।

कई बार मैं जानवरों को अपने फ्लैट पर ले आती, लेकिन वहां उन्हें लंबे समय तक रखना संभव नहीं होता था। वे रोते और बेचैन रहते, उनका मन शांत नहीं होता। मुझे महसूस हुआ कि उनके लिए छोटे-छोटे स्थानों में रहना उनकी मानसिक स्थिति के लिए सही नहीं है। इसलिए हमने फिर से उनके लिए एक छोटा सा सुरक्षित घर बनाया। वहाँ उन्हें कुछ हद तक स्वतंत्रता और आराम दोनों मिल सके। साथ ही, हमने मोहल्ले के लोगों से भी कहा कि वे धीरे-धीरे गाड़ी चलाएं, बच्चों और जानवरों को ध्यान से देखें।

भूरी ने धीरे-धीरे समझना शुरू किया कि उसके बच्चों के मरने का कारण क्या है। अब वह पहले जैसी अत्यधिक सावधानी बरतने लगी, लेकिन इतना भी नहीं कि वह पूरी तरह भावुक हो जाए। मैंने देखा कि पहले उसकी हर नजर, हर कदम उसकी ममता और चिंता से भरी होती थी, लेकिन अब उसकी भावनाएँ थोड़ी शांत और नियंत्रित हो गई थीं। शायद लगातार दर्द, खोए हुए बच्चों की याद और शरीर की थकावट ने उसे अंदर से बदल दिया था। वह अब उतनी भावुक नहीं थी जितनी पहले थी।

पिछले दो सालों के अंदर भूरी तीन बार मां बनी थी। हर बार उसके लिए यह प्रक्रिया मुश्किल थी। शरीर कमजोर पड़ चुका था, और उसे पोषण की भी आवश्यकता थी। हमने उसे जितना संभव हो उतना पौष्टिक खाना खिलाया, लेकिन शायद अब उसे कुछ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी होने लगी थीं। उसका शरीर थक गया था, और कभी-कभी मुझे लगता कि उसकी मानसिक स्थिति भी धीरे-धीरे हार मानने लगी थी।

भूरी के बच्चे धीरे-धीरे बड़े हो रहे थे, लेकिन हर पल खतरे में थे। सड़क, अन्य कुत्तों का झुंड, और कभी-कभी बीमारी—हर तरफ जोखिम था। इसलिए हमें लगातार उनकी निगरानी रखनी पड़ती थी। मैं और कुछ भरोसेमंद लोग मिलकर उनकी सुरक्षा के लिए दिन-रात सजग रहते। कभी खाना, कभी पानी, कभी छोटी-मोटी चोट का इलाज—हर छोटी जरूरत पर ध्यान देना हमारी दिनचर्या बन गई थी।

इस दौरान मैंने महसूस किया कि जानवरों में भी ममता, डर, दर्द और खुशी जैसी भावनाएँ उतनी ही गहरी होती हैं जितनी इंसानों में। भूरी का हर कदम, हर प्रतिक्रिया इसे दर्शाती थी। जब उसके बच्चे खेलते, गिरते, या सड़क की ओर भागते, तो वह तुरंत उनके पास जाती, उन्हें सुरक्षित करती। उसकी आंखों में चिंता साफ़ झलकती थी। जब कोई बच्चा घायल होता, तो वह लंबे समय तक उसके पास बैठी रहती, उसे सूंघती और हल्की आवाज़ में पुकारती। यही दिखाता था कि उनका दिल भी हमें समझाने की कोशिश करता है कि वे भी महसूस करते हैं।

धीरे-धीरे मेरी "मददगार पहल" का दायरा भी बढ़ता गया। केवल भूरी और उसके बच्चों की मदद करना पर्याप्त नहीं था। मैंने आसपास के अन्य जानवरों, सड़क पर रहने वाले बेसहारा लोगों और जरूरतमंदों के लिए भी सहायता करना शुरू किया। कभी किसी को खाना देना, कभी पानी की व्यवस्था करना, कभी छोटे बच्चों को स्कूल या घर तक पहुँचाना—हर छोटी कोशिश ने मुझे यह सिखाया कि सेवा केवल एक प्रजाति या एक व्यक्ति तक सीमित नहीं हो सकती।
भूरी की परिस्थितियों ने मुझे यह भी समझाया कि स्थायी समाधान कितना महत्वपूर्ण है। छोटे-छोटे प्रयास काम आते हैं, लेकिन अगर किसी जानवर या बच्चे को लगातार खतरा और दर्द झेलना पड़े, तो यह हमारे समाज के लिए चिंता का विषय है। इसलिए मैंने अपनी पूरी ऊर्जा और समय इन कामों में लगाना शुरू किया। सुबह मेरी दिनचर्या

भूरी और उसके बच्चों को खाना और पानी देने से शुरू होती, और शाम को उनका ध्यान रखने के बाद ही खत्म होती।

कई बार ऐसा हुआ कि जब मैं भूखी या थकी हुई होती, तब भी उन्हें प्राथमिकता देती। कभी-कभी मेरी तबियत इतनी खराब होती कि खाना देना मुश्किल हो जाता, तब मैं मोहल्ले के लोगों से मदद मांगती। धीरे-धीरे लोग भी समझने लगे कि यह केवल भूरी की कहानी नहीं है, बल्कि उन सभी जानवरों और जरूरतमंदों की है जो बिना किसी सहारे के जीवन जी रहे हैं।

भूरी का व्यवहार अब पहले की तुलना में बदल गया था। वह अब ज्यादा संवेदनशील नहीं थी, लेकिन अब भी अपने बच्चों के लिए पूरी तरह चौकस रहती थी। हर खतरे का अंदाजा वह पहले से जल्दी लगा लेती थी। एक बार झुंड वाले कुत्तों का हमला हुआ, तो भूरी ने पूरी बहादुरी से उनका सामना किया। हालांकि उस झुंड में उसका एक बच्चा मारा गया, लेकिन उसने अपनी पूरी ताकत से विरोध किया और अगले ही सप्ताह बदला भी लिया। इस घटना ने मुझे सिखाया कि ममता और बहादुरी का संयोजन जानवरों में भी होता है।

मुझे यह अनुभव भी हुआ कि समाज में लोग अक्सर जानवरों की भावनाओं को नजरअंदाज करते हैं। भूरी की हर प्रतिक्रिया, उसका डर, उसकी ममता—यह सब हमें यह सिखाता है कि जानवरों को भी समझने और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता होती है। कई लोग मानते हैं कि सिर्फ मार-पीट या डराना ही उन्हें नियंत्रित करता है, लेकिन वास्तव में प्रेम, समझ और थोड़ी देखभाल उन्हें शांत और भरोसेमंद बनाती है।

भूरी और उसके बच्चों की कहानियों ने मुझे हर दिन प्रेरित किया कि मैं अपनी "मददगार पहल" को और विस्तार दूँ। मैंने जानवरों के लिए सुरक्षित घर, खाना, पानी और इलाज की व्यवस्था की, साथ ही जरूरतमंद लोगों की मदद भी जारी रखी। कभी किसी को अस्थायी आश्रय दिया, कभी उन्हें रोज़गार या स्कूल तक पहुँचाने में मदद की। धीरे-धीरे मेरी कोशिशें लोगों तक भी पहुंचने लगीं, और कई लोग भी इस पहल का हिस्सा बनने लगे।

मैं आगे बढ़ती गई। मेरा काम रुकने वाला नहीं था। भूरी और उसके बच्चों का ध्यान रखना अब मेरी दिनचर्या का हिस्सा बन चुका था। सुबह उठते ही सबसे पहले यही ध्यान आता कि आज उन्हें क्या खिलाना है, पानी की व्यवस्था ठीक है या नहीं, कहीं कोई घायल तो नहीं। घर के काम, अपनी जिम्मेदारियाँ और बच्चों की देखभाल के बीच भी उनका स्थान अलग था। मैं खुद एक माँ थी। मेरे अपने छोटे-छोटे बच्चे थे, जिन्हें संभालना, स्कूल के लिए तैयार करना, उनकी पढ़ाई देखना—सब कुछ मेरी जिम्मेदारी थी। फिर भी जाने कहाँ से इतनी ऊर्जा आ जाती थी कि मैं बच्चों को साथ लेकर दूर-दूर तक जानवरों को खाना खिलाने निकल जाती थी।

कई बार लोग पूछते—"इतना सब कैसे कर लेती हो?" मैं बस मुस्कुरा देती। सच तो यह है कि यह कोई दिखावे का काम नहीं था, न ही किसी को प्रभावित करने की कोशिश। यह मेरे भीतर की आवाज़ थी। आज भी वही काम चल रहा है। समय बदल गया, परिस्थितियाँ बदलीं, बच्चे बड़े हो रहे हैं, लेकिन सड़क पर रहने वाले जानवरों के लिए मेरे कदम आज भी वैसे ही चलते हैं। फर्क बस इतना है कि अब अनुभव थोड़ा ज्यादा है, समझ थोड़ी गहरी है।

लेकिन यह प्रेरणा मुझे कहाँ से मिली? यह सवाल मैं खुद से भी कई बार पूछ चुकी हूँ। शायद इसका उत्तर इसी कहानी में छुपा है। यह कहानी सिर्फ भूरी की नहीं है। यह गोरी की भी नहीं है। यह उन सभी कुत्तों की है जो सड़क पर जन्म लेते हैं, वहीं बड़े होते हैं, भूखे-प्यासे दिन काटते हैं और अक्सर बिना किसी शोर के इस दुनिया से चले जाते हैं। मैंने उनकी आँखों में भूख देखी है, डर देखा है, उम्मीद भी देखी है। कई बार उनके पास बैठकर सिर्फ उन्हें देखा है—वे भी हमें देखते हैं, जैसे कुछ कहना चाहते हों।

भूरी उनमें से एक थी, लेकिन फिर भी सबसे अलग थी। उसका मेरे जीवन से एक गहरा जुड़ाव बन गया था। बाकी कुत्तों को मैं खाना देती थी, पानी रखती थी, इलाज करवाती थी, लेकिन भूरी के साथ रिश्ता सिर्फ सेवा का नहीं था। मैंने उसके जीवन को महसूस किया। उसकी हर गर्भावस्था, हर प्रसव, हर खोया हुआ बच्चा—सब मेरे सामने हुआ। मैंने उसके दर्द को पास से देखा। जब उसके बच्चे एक-एक करके उससे छिनते गए, तब मैंने उसके चेहरे पर वह खालीपन देखा जो शब्दों में नहीं उतारा जा सकता।

मैंने कई कुत्तियों को बच्चे देते देखा है। कुछ मजबूत होती हैं, कुछ कमजोर। कुछ अपने बच्चों को संभाल पाती हैं, कुछ परिस्थितियों से हार जाती हैं। लेकिन भूरी की कहानी अलग थी। वह बार-बार माँ बनी, और बार-बार उसके बच्चे उससे छिनते गए। कभी बीमारी, कभी सड़क दुर्घटना, कभी झुंड का हमला—हर बार कारण अलग था, लेकिन परिणाम एक ही। उसके पास खाली जगह बच जाती थी, जहाँ पहले उसके बच्चे खेलते थे।

जब भी वह माँ बनती, मैं उसके लिए पहले से ज्यादा सजग हो जाती। पौष्टिक खाना, सुरक्षित जगह, आसपास निगरानी—जो कुछ मेरे बस में था, करती। मेरे अपने बच्चे भी इस प्रक्रिया का हिस्सा बन चुके थे। वे छोटे हाथों से रोटी के टुकड़े तोड़ते, पानी की कटोरी रखते, और दूर खड़े होकर पिल्लों को खेलते देखते। कई बार मैं सोचती, शायद यही सीख उन्हें जीवन भर याद रहेगी—किसी निर्बल के लिए खड़ा होना।

भूरी के जीवन को महसूस करते-करते मैंने बाकी कुत्तों से भी उसकी तुलना की। कुछ कुत्ते स्वभाव से आक्रामक थे, कुछ डरपोक, कुछ पूरी तरह इंसानों से दूर। लेकिन भूरी में एक अजीब संतुलन था। वह सतर्क भी थी, लेकिन भरोसा करना भी जानती थी। दर्द झेलने के बाद भी वह पूरी तरह कठोर नहीं हुई थी। हाँ, उसमें बदलाव जरूर आया था, लेकिन उसके भीतर की ममता खत्म नहीं हुई थी।

मैं बाकी पशुओं के बारे में भी इस कहानी में आपसे बातें साझा करूँगी। क्योंकि सड़क की जिंदगी केवल एक कुतिया की कहानी नहीं होती। वहाँ गायें हैं, जो प्लास्टिक खाकर बीमार हो जाती हैं। बिल्ली के बच्चे हैं, जो नालियों में छिपकर बड़े होते हैं। घायल पिल्ले हैं, जिन्हें कोई उठाकर अस्पताल तक नहीं ले जाता। लेकिन इस कहानी का केंद्र भूरी है। इसका नाम भी उसी पर है, क्योंकि उसने अपने बच्चे बार-बार खोए। उसकी कहानी अधूरी नहीं है, लेकिन आसान भी नहीं है।

जब मैंने यह लिखना शुरू किया, तब मन में यही था कि लोग समझें—सड़क पर रहने वाले जानवर सिर्फ "आवारा" नहीं होते। उनका भी एक परिवार होता है, एक जीवन चक्र होता है। भूरी ने मुझे यह सब दिखाया। उसकी हर प्रसव पीड़ा, हर चिंता,

हर संघर्ष मेरे सामने था। मैंने उसे रातों को जागते देखा है। मैंने उसे खाली जगह को सूँघते देखा है, जहाँ उसका बच्चा आखिरी बार बैठा था।

कई बार मैं अपने घर लौटती और अपने बच्चों को सोता देखती। मन में एक अजीब-सा एहसास आता—एक माँ के रूप में मैं सुरक्षित दीवारों के भीतर हूँ, लेकिन भूरी खुली सड़क पर है। मेरे बच्चों के लिए दरवाजे बंद हो जाते हैं, लेकिन उसके बच्चों के लिए कोई दरवाजा नहीं। शायद यही तुलना मेरे भीतर एक बेचैनी जगाती रही, और वही बेचैनी धीरे-धीरे सेवा में बदल गई।

मैंने यह भी देखा कि जब कोई कुतिया बार-बार अपने बच्चे खोती है, तो उसके व्यवहार में बदलाव आता है। वह या तो बहुत आक्रामक हो जाती है, या पूरी तरह उदासीन। भूरी दोनों के बीच कहीं खड़ी थी। वह अपने बच्चों को बचाने की पूरी कोशिश करती, लेकिन जब कोई चला जाता, तो कुछ देर खोजती, फिर चुप हो जाती। वह लंबे समय तक एक ही जगह बैठी रहती। उसकी आँखों में थकान साफ दिखती थी।

उसके शरीर पर भी असर दिखने लगा था। लगातार गर्भधारण और प्रसव ने उसे कमजोर कर दिया था। मैंने कोशिश की कि उसे ज्यादा पोषण मिले, दवाइयाँ मिलें, लेकिन सड़क का जीवन हर चीज़ को अधूरा कर देता है। कई बार जो योजना बनाई, वह पूरी नहीं हो पाई। फिर भी कोशिश जारी रही।

आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो समझ आता है कि भूरी ने मुझे सिर्फ सेवा नहीं सिखाई, बल्कि धैर्य भी सिखाया। लेकिन इस कहानी में अभी बहुत कुछ बाकी है। क्योंकि भूरी का जीवन केवल बच्चों को जन्म देने और उन्हें खो देने तक सीमित नहीं था। उसके जीवन में और भी मोड़ आए, और उन मोड़ों ने मुझे और भी गहराई से बदल दिया।

भूरी की कहानी अपने रास्ते पर चल ही रही थी, उसके बच्चे, उसकी आदतें, उसकी चुप्पी और उसके भीतर का बदलाव—सब कुछ धीरे-धीरे समय के साथ आगे बढ़ रहा था। लेकिन उसी दौरान मोहल्ले का माहौल भी बदलने लगा। कुछ नए कुत्ते आ गए थे। शायद किसी दूसरी गली से भटक कर आए थे, या फिर किसी ने उन्हें यहाँ

छोड़ दिया था। शुरुआत में वे दूर-दूर रहते, लोगों को देखते, माहौल समझते। धीरे-धीरे उन्होंने भी यहीं ठिकाना बना लिया।

मेरा ध्यान अब केवल भूरी तक सीमित नहीं रह गया था। नए कुत्तों में कुछ छोटे-छोटे पिल्ले भी थे। उनकी हालत देखकर लगा कि अगर इन्हें नियमित खाना और देखभाल न मिली तो वे ज्यादा दिन टिक नहीं पाएँगे। धीरे-धीरे उनकी जिम्मेदारी भी मेरे हिस्से आ गई। मैं पहले भूरी और उसके बच्चों को देखती, फिर उन नए पिल्लों के पास जाती। मेरे अपने छोटे बच्चे भी अब इस काम के आदी हो चुके थे। वे समझते थे कि मम्मी का दिन इन सबके बिना पूरा नहीं होता।

उन्हीं नए कुत्तों में एक बहुत प्यारी-सी डॉग थी। उसका रंग हल्का भूरा था, आँखें साफ और शांत। वह बाकी कुत्तों की तरह शोर नहीं करती थी। जब मैं खाना रखती, तो वह धैर्य से इंतज़ार करती। अगर मैं हाथ से रोटी देती, तो वह धीरे से लेती, कभी दाँत नहीं दिखाती। उसकी आदतों में एक सादगी थी। मैंने उसका नाम "ब्रूना" रखा। नाम रखते ही जैसे उसका एक अलग परिचय बन गया।

ब्रूना बहुत बात मानने वाली थी। अगर मैं हाथ से इशारा करती कि पीछे हटो, तो वह तुरंत पीछे हो जाती। अगर कहती बैठो, तो बैठ जाती। वह किसी पर बेवजह भौंकती नहीं थी। बच्चों के पास भी शांति से बैठ जाती थी। मोहल्ले के लोग भी उसे पहचानने लगे थे। कई बार कोई कह देता—"यह तो समझदार है।" सच में, उसके व्यवहार में एक अलग संतुलन था।

कुछ समय बाद ब्रूना भी माँ बनी। उसके चार पिल्ले हुए। छोटे-छोटे, गोल-मटोल, हमेशा एक-दूसरे के ऊपर चढ़े रहते। ब्रूना उनके साथ खेलती भी थी और सख्ती भी करती थी। अगर कोई पिल्ला ज्यादा दूर चला जाता, तो वह तुरंत उसे हल्के से मुँह में पकड़कर वापस ले आती। कभी-कभी वे सभी सड़क के किनारे धूप में खेलते। मैं दूर से देखती रहती। कोशिश करती कि गाड़ियाँ धीरे चलें। कई बार ड्राइवरों को हाथ देकर इशारा भी करती।

सड़क का जीवन हर दिन एक जैसा नहीं होता। वहाँ हर पल खतरा साथ चलता है। गाड़ियाँ रोज़ गुजरती थीं—तेज़, बिना रुके, बिना देखे। पिल्लों को अभी समझ नहीं थी। वे अचानक सड़क की ओर दौड़ जाते। मैं हर बार दिल थामकर खड़ी हो जाती।

और फिर एक दिन वही हुआ जिसका डर हमेशा रहता था।

दोपहर का समय था। मैं ऊपर थी। अचानक तेज़ ब्रेक की आवाज़ आई और साथ ही कुत्तों का शोर। मेरा दिल धक से रह गया। नीचे देखा तो ब्रूना सड़क के बीच खड़ी थी, घबराई हुई। उसके एक पिल्ले का छोटा-सा शरीर सड़क पर पड़ा था। गाड़ी आगे निकल चुकी थी।

ब्रूना इधर-उधर भाग रही थी, जैसे समझ नहीं पा रही हो कि क्या करे। उसने अपने पिल्ले को सूँघा, उसे हल्के से धक्का दिया, फिर मेरी तरफ देखने लगी। वह सीधे मेरी सीढ़ियों की ओर भागी। उसकी आवाज़ में एक अलग-सी बेचैनी थी। वह भौंक नहीं रही थी, रो रही थी। उसकी आँखें मुझ पर टिकी थीं—जैसे कह रही हो, “चलो, कुछ करो।”

मैं बिना कुछ सोचे नीचे दौड़ी। पिल्ला बेहोश पड़ा था। उसकी साँस बहुत हल्की थी, या शायद मुझे ऐसा लगा। मैंने उसे सावधानी से उठाया और घर के नीचे छाँव में ले आई। पानी की कटोरी लाई, उसके मुँह के पास लगाया। थोड़ा पानी उसके होंठों पर लगाया। वह कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा था।

मैंने तुरंत डॉक्टर को कॉल किया। जितनी जानकारी दे सकती थी, दी। तब तक मैंने फर्स्ट ऐड करने की कोशिश की। हल्के से उसके सीने को दबाया, उसकी नाक साफ की। आसपास कुछ लोग भी इकट्ठा हो गए थे। सबकी निगाहें उसी पर थीं। लेकिन कुछ ही मिनटों में साफ हो गया कि वह वापस नहीं आएगा।

ब्रूना पास खड़ी थी। वह लगातार उसे सूँघ रही थी। कभी उसके सिर को चाटती, कभी हल्के से पंजा रखती। उसकी आँखों में उलझन थी—जैसे समझ नहीं पा रही हो कि यह क्यों नहीं उठ रहा। मैं उसके सिर पर हाथ फेरती रही, लेकिन उस पल कोई शब्द काम नहीं आ रहे थे।

कुछ देर बाद मैंने कॉलोनी के भैया लोगों को बुलाया। उनकी मदद से हमने उस पिल्ले को एक कपड़े में लपेटा और पास के खाली हिस्से में दफना दिया। ब्रूना थोड़ी दूरी पर बैठी रही। वह चुप थी। न भौंकी, न इधर-उधर भागी। बस देखती रही।

उस दिन के बाद ब्रूना बदल गई। उसने दो दिन तक कुछ नहीं खाया। मैं रोज़ खाना लेकर जाती, उसके सामने रखती, हाथ से देने की कोशिश करती, लेकिन वह मुँह फेर लेती। उसके बाकी तीन पिल्ले इधर-उधर खेल रहे थे, कभी दूध पीते, कभी आपस में उलझते। लेकिन ब्रूना का ध्यान कहीं और था। वह अक्सर उसी दिशा में देखती जहाँ दुर्घटना हुई थी।

मैं समझ रही थी कि उसका दर्द गहरा है। लेकिन उसके पास अभी भी तीन बच्चे थे। उनकी जिम्मेदारी खत्म नहीं हुई थी। इसलिए मैंने और ज्यादा ध्यान देना शुरू किया। उन्हें नियमित खाना, पानी, सुरक्षित जगह—सब सुनिश्चित किया। अगर ब्रूना नहीं खाती, तो मैं पिल्लों को अलग से खिला देती।

धीरे-धीरे समय आगे बढ़ा। तीसरे दिन उसने थोड़ा खाना खाया। चौथे दिन वह कुछ देर पिल्लों के साथ बैठी। एक हफ्ते बाद उसने फिर से हल्का खेलना शुरू किया। पूरी तरह सामान्य होने में समय लगा, लेकिन वह धीरे-धीरे वापस अपनी दिनचर्या में आ गई।

वैसे सच बात तो यह है कि कुत्तों के पास हमारे जैसा कोई काम नहीं होता। न नौकरी, न कोई तय दिनचर्या। उनका जीवन खाने, सोने और भौंकने के बीच चलता है। शायद इसी वजह से कई लोग उन्हें महत्व नहीं देते। उन्हें बेकार समझते हैं, बोझ समझते हैं।

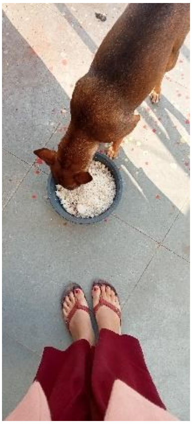

लेकिन अगर ध्यान से देखा जाए, तो यही कुत्ते हमारी गलियों के रक्षक होते हैं। जब भी कोई संदिग्ध व्यक्ति कॉलोनी में प्रवेश करता है, सबसे पहले इन्हें आभास हो जाता है। रात में अगर कोई अजनबी गली में घूमे, तो सबसे पहले ये ही आवाज़ उठाते हैं। कई बार मैंने देखा है—कोई अनजान बाइक रुकती है, तो वे तुरंत सतर्क हो जाते हैं। वे पीछा करते हैं, भौंकते हैं, चेतावनी देते हैं।

ब्रूना भी ऐसी ही थी। अपने बच्चों के साथ खेलने वाली, शांत स्वभाव की, लेकिन रात में गली की हलचल पर तुरंत खड़ी हो जाने वाली। भूरी अपने क्षेत्र की रक्षा करती थी, और अब ब्रूना भी उसी लय में शामिल हो गई थी। दोनों अलग स्वभाव की थीं, लेकिन अपने-अपने तरीके से इस मोहल्ले का हिस्सा थीं।

समय के साथ मोहल्ले के लोग भी यह समझने लगे थे कि ये केवल "आवारा" जानवर नहीं हैं। ये यहाँ रहते हैं, यहीं बड़े होते हैं, और किसी न किसी तरह इस जगह की सुरक्षा का हिस्सा बन जाते हैं। दिन में ये धूप में सोते दिखते हैं, लेकिन रात में यही गली की आँखें बन जाते हैं।

ब्रूना अपने तीन पिल्लों के साथ फिर से सामान्य दिखने लगी थी। वे अब थोड़े बड़े हो गए थे। सड़क की तरफ जाते तो वह तुरंत उन्हें वापस बुला लेती। दुर्घटना के बाद वह पहले से ज्यादा सतर्क हो गई थी। मैं जब भी उन्हें देखती, मन में एक मिश्रित भाव आता—एक खोया हुआ बच्चा, और तीन जो अभी भी उसके साथ थे।

भूरी की कहानी चल रही थी, ब्रूना की कहानी उसके साथ जुड़ गई थी, और मेरा दिन इन सबके बीच बीत रहा था। हर गली में एक नई घटना, हर मोड़ पर एक नई जिम्मेदारी। मैं बस इतना जानती थी कि जहाँ तक संभव होगा, मैं इनके साथ रहूँगी—

खाने के समय, बीमारी के समय, और ऐसे ही अचानक आने वाले कठिन पलों में भी।

मैं गली-मोहल्ले में जाकर देखती तो कहीं न कहीं नए-नए पिल्लों का जन्म हो चुका होता। एक गली में दो, दूसरी में तीन, कहीं किसी टूटी दीवार के पास माँ अपने बच्चों को दूध पिला रही होती। मेरा मन अपने-आप उधर खिंच जाता। अब यह सिर्फ एक आदत नहीं रह गई थी, यह मेरे जीवन का हिस्सा बन चुका था। जैसे ही सुनती कि कहीं पिल्ले हुए हैं, मैं वहाँ तक जरूर जाती। पहले दूर से देखती, फिर धीरे-धीरे पास जाकर हालात समझती। माँ कुतिया की हालत कैसी है, जगह सुरक्षित है या नहीं, आसपास गाड़ियाँ ज्यादा तो नहीं चलतीं—सब देखती।

मैंने अपना काम शुरू कर दिया था। अब मुझे सिर्फ भूरी या ब्रूना तक सीमित नहीं रहना था। जहाँ भी कोई जख्मी जानवर दिखता, मैं रुक जाती। कई बार चलते-चलते सड़क किनारे कोई कुत्ता लंगड़ाता हुआ दिख जाता। कोई कान फटा हुआ, किसी के शरीर पर घाव, किसी के पैर में काँच चुभा हुआ। ऐसे समय में मैं बिना सोचे घर से दवाई का छोटा डिब्बा लेकर आ जाती। जितना समझ आता, उतनी सफाई करती, दवा लगाती। जरूरत पड़ती तो डॉक्टर को फोन करती। हर बार जानवर बच ही जाए, ऐसा नहीं होता था, लेकिन कोशिश रुकती नहीं थी।

भूखे-प्यासे जानवरों को खाना और पानी देना तो अब रोज़ का काम था। गर्मियों में मैं अलग-अलग जगहों पर पानी की बाल्टियाँ रखती। कई बार बच्चे साथ होते, वे बोतल से पानी भरते, कटोरियाँ सीधी करते। कुछ लोग मदद कर देते, कुछ बस दूर से देखते। धीरे-धीरे लोगों को समझ आने लगा था कि यह काम रुकने वाला नहीं है। यह एक दिन का जोश नहीं था।

ऐसा करते-करते मेरा काम चल पड़ा था। अब गली-गली में लोग मुझे पहचानने लगे थे। कोई बता देता—“दीदी, उधर वाली गली में एक कुतिया ने अभी बच्चे दिए हैं।” कोई कहता—“एक पिल्ला बीमार लग रहा है।” मेरे पास कोई बड़ी संस्था नहीं थी, न ही कोई फंड। जो भी था, घर से, अपने स्तर पर। लेकिन काम बढ़ता जा रहा था।

फिर भी, इस सब के बीच मैं भूरी को रोज़ देखती थी। वह अभी-अभी अपने दर्द से बाहर निकल रही थी। उसके व्यवहार में एक गहराई आ गई थी। वह पहले जैसी भागदौड़ नहीं करती थी। ज्यादा कुत्तों के साथ खेलने नहीं जाती थी। अक्सर घर के आसपास ही रहती। सीढ़ियों के पास, दीवार के कोने में, या उसी जगह जहाँ उसे थोड़ा सुकून मिलता। उसकी आँखों में अब पहले जैसी बेचैनी कम थी, लेकिन एक स्थायी गंभीरता आ गई थी।

जब मैं उसके पास बैठती, तो वह चुपचाप मेरे पास आकर बैठ जाती। न ज्यादा उछलती, न कोई शोर। जैसे समझ चुकी हो कि जीवन में शोर से ज्यादा चुप्पी स्थायी होती है। वह बाकी कुत्तों से दूरी बनाए रखती थी। अगर कोई नया कुत्ता उसके क्षेत्र में आता, तो बस हल्की चेतावनी देती, लेकिन लड़ाई में नहीं पड़ती। उसमें एक परिपक्वता आ गई थी।

उधर मोहल्ले का दायरा बढ़ता जा रहा था। कुछ ही समय में उस पूरे इलाके में लगभग 40-45 कुत्ते हो गए थे। अलग-अलग गली, अलग-अलग स्वभाव। कोई बहुत चंचल, कोई बिल्कुल शांत, कोई डरपोक, कोई लड़ाकू। और इन सबको मैं खाना देती थी। सुबह एक राउंड, शाम एक राउंड। कई बार बीच में भी।

खाना तैयार करना भी अब एक अलग प्रक्रिया बन गई थी। रोटियाँ इकट्ठी करना, चावल उबालना, कभी-कभी सब्जी मिलाना। अगर किसी दिन खाना कम पड़ जाता,

तो मन बेचैन हो जाता। मैं कोशिश करती कि किसी को खाली पेट न रहना पड़े। 40-45 कुत्तों का मतलब था हर दिन बड़ी मात्रा में खाना। कई बार थकान इतनी होती कि शरीर जवाब देने लगता, लेकिन जैसे ही समय होता, पैर अपने-आप उठ जाते।

शाम के समय जब मैं खाना लेकर निकलती, तो अलग-अलग जगहों पर समूह बन जाते। हर कुत्ते का अपना तय स्थान था। कुछ मंदिर के पास, कुछ पार्क के कोने में, कुछ नाली के पास वाली खाली जगह पर। अगर मैं देर कर देती, तो वे दूर से आते हुए दिख जाते। उनकी आँखों में पहचान होती। वे मेरे कदमों की आहट तक पहचानने लगे थे।

इतने सारे कुत्तों के बीच संतुलन बनाए रखना भी आसान नहीं था। अगर खाना एक जगह ज्यादा रख दूँ, तो लड़ाई हो जाती। इसलिए मैं अलग-अलग दूरी पर छोटे-छोटे हिस्सों में खाना रखती। कुछ कुत्ते इंतजार करना जानते थे, कुछ को अलग से समझाना पड़ता था। धीरे-धीरे एक व्यवस्था बन गई थी।

इन सबके बीच भूरी अपने स्थान पर थी। वह अब भी मेरे काम का हिस्सा थी, लेकिन केंद्र नहीं। वह ज्यादा घर के पास रहती, जैसे अपने सीमित दायरे में ही सुरक्षित महसूस करती हो। कई बार मैं उसे देखती तो लगता कि वह भी बाकी कुत्तों को देख रही है—नई पीढ़ी, नए पिल्ले, नई माएँ। शायद वह भी अपने अनुभवों से कुछ सीख चुकी थी।

मोहल्ले में नए पिल्लों की संख्या बढ़ती जा रही थी। कुछ लोग खुश होते, बच्चे उन्हें देखकर खिलखिलाते। लेकिन मुझे साथ ही भविष्य की चिंता भी होती। इतने सारे पिल्ले, इतनी कम सुरक्षित जगह। हर बार वही सवाल—कितने बड़े हो पाएँगे? कितने बच पाएँगे?

फिर भी दिनचर्या चलती रही। सुबह का सूरज, शाम की थकान, बीच-बीच में डॉक्टर को कॉल, कभी किसी का इलाज, कभी किसी को बचाने की कोशिश। 40-45 कुत्तों का समूह अब केवल जानवरों का झुंड नहीं था, वह मेरे दिन का हिस्सा बन चुका था। हर एक का चेहरा पहचान में आता था। कौन किस गली का है, किसका स्वभाव कैसा है, किसे क्या पसंद है—सब धीरे-धीरे याद हो गया था।

कभी-कभी मैं सोचती थी कि यह सब कैसे इतना बढ़ गया। शुरुआत तो सिर्फ भूरी से हुई थी। फिर ब्रूना आई। फिर दूसरी गली के पिल्ले। और अब पूरा इलाका। लेकिन यह बढ़ाव अचानक नहीं था। हर दिन की एक छोटी कोशिश ने इसे यहाँ तक पहुँचाया था।

रात को जब सब शांत हो जाता, तो गली में 2-3 कुत्ते ही जागते रहते। बाकी कहीं कोनों में सो जाते। मैं ऊपर से झाँककर देखती। कहीं भूरी दीवार से सटी हुई, कहीं ब्रूना अपने बच्चों के साथ, कहीं कोई नया पिल्ला अपनी माँ के पेट से लगा हुआ। उस दृश्य में शोर नहीं होता था, लेकिन एक जीवंतता होती थी।

और अगली सुबह फिर वही सिलसिला शुरू हो जाता—नई खबर, नया जन्म, नई चोट, नया संघर्ष। मैं बस हर दिन वहाँ मौजूद रहती थी, जहाँ मुझे होना चाहिए था।

इस बीच कई बार ऐसा भी होता था कि मुझे ससुराल या मायके जाना पड़ जाता था। पारिवारिक कारण, कोई कार्यक्रम, कभी अचानक बुलावा—और मुझे जाना ही पड़ता। लेकिन जैसे ही जाने की तैयारी करती, मन में एक ही चिंता शुरू हो जाती—इनका क्या होगा? 40-45 कुत्ते, पिल्ले, नई माएँ… कौन देखेगा इन्हें? कौन समय पर खाना देगा? कौन देखेगा कि कोई बीमार तो नहीं?

पहले-पहले तो मैं बहुत बेचैन रहती थी। फोन पर बार-बार पूछती, मन नहीं लगता था। फिर धीरे-धीरे मैंने लोगों की मदद लेना शुरू किया। कुछ ऐसे दोस्त बने जो मेरे काम को समझते थे। मैंने उन्हें सारी जगहें दिखाईं—कौन सा कुत्ता किस गली में रहता है, किसे अलग से खिलाना है, कौन बीमार है। मैं उन्हें पैसे दे दिया करती थी, ताकि मेरे अनुपस्थित रहने पर वे खाना-पीना खिला सकें और देखभाल कर सकें। हर बार जाते समय मैं सूची बनाकर देती—सुबह कहाँ जाना है, शाम को कहाँ।

मैं खुद एक रेंटल अपार्टमेंट में रहती थी। किराए का घर था, अपनी मर्यादाएँ थीं। मैं कुत्तियों या उनके पिल्लों को घर के अंदर नहीं रख सकती थी। कई बार मन करता था कि सबको उठा लाऊँ, सुरक्षित कर दूँ, लेकिन वह संभव नहीं था। इसलिए मैंने उनके लिए बाहर एक ऐसा कोना बना दिया था जहाँ वे कुछ हद तक सुरक्षित रह

सकें। दीवार की ओट में गत्ते बिछाए, प्लास्टिक की चादर लगाई, बारिश से बचाने का इंतज़ाम किया। बस एक ही डर हमेशा रहता—कहीं सड़क पर निकलकर किसी गाड़ी के नीचे न आ जाएँ।

एक बार मुझे गाँव जाना पड़ा। चार दिन के लिए गई थी। जाने से पहले सब व्यवस्था कर दी थी। दोस्तों को पैसे दिए, जगहें समझाईं, खाना रखवा दिया। फिर भी मन पूरी तरह शांत नहीं था। चार दिन बाद जब लौटी, तो सबसे पहले गली की ओर ही कदम बढ़े। लेकिन कुछ अजीब-सा सन्नाटा था। मेरे कुत्ते मुझे दिखाई नहीं दे रहे थे।

मैंने इधर-उधर देखा। आवाज़ लगाई। जिन जगहों पर वे रोज़ बैठते थे, वहाँ कोई नहीं था। दिल धड़कने लगा। मैंने आसपास ढूँढा, दूसरी गली में गई, पार्क के पास गई—लेकिन कोई नहीं मिला। पहली आशंका यही आई कि शायद नगर निगम की गाड़ी आई होगी और उन्हें पकड़कर ले गई होगी। मैं तुरंत वहाँ पता करने गई। लेकिन वहाँ से साफ जवाब मिला—ऐसा कुछ नहीं हुआ, कोई गाड़ी उस मोहल्ले में नहीं आई।

अब सवाल और बड़ा हो गया। फिर गए कहाँ?

मैंने लोगों से पूछा। किसी ने कंधे उचकाए, किसी ने कहा—“पता नहीं।” सच यह था कि अधिकतर लोग इतना ध्यान नहीं देते थे। वे आते-जाते रहते हैं, पर रोज़ की उपस्थिति पर गौर नहीं करते। मैं बार-बार उन्हीं जगहों पर लौटती, जहाँ वे बैठते थे। मन में डर और बेचैनी बढ़ती जा रही थी।

फिर मैंने खुद को समझाया—कुत्तों का नेचर होता है। अगर उन्हें कोई ज्यादा सुरक्षित स्थान दिख जाए, तो वे वहाँ चले जाते हैं। शायद किसी दूसरी गली में चले गए हों। शायद कहीं और खाना मिलने लगा हो। पहले दिन खुद को यही समझाया। दूसरे दिन भी नहीं मिले, तो चिंता और गहरी हो गई।

उसी दौरान एक घटना ने मुझे अंदर तक हिला दिया।

मैं सड़क के किनारे खड़ी थी कि देखा एक कार अपने पार्किंग स्थान से निकल रही है। जैसे ही कार आगे बढ़ी, नीचे कुछ दिखाई दिया। मैं दौड़कर पास गई। वहाँ एक

पिल्ला मरा हुआ पड़ा था। मेरे हाथ-पैर काँप गए। चेहरा पहचानते ही दिल बैठ गया—वह हमारे ही समूह का था।

मैं रो पड़ी। तुरंत डॉक्टर को बुलाया। मन में यही था कि शायद एक्सीडेंट हुआ होगा। डॉक्टर आए, उन्होंने जांच की। लेकिन उन्होंने कहा कि यह किसी गाड़ी से कुचलने से नहीं मरा है। शरीर पर उस तरह की चोट नहीं थी। उन्होंने शक जताया कि इसने कुछ जहरीला पदार्थ खा लिया है।

मेरे दिमाग में जैसे घंटी बजी। जहरीला पदार्थ? कैसे? कहाँ से?

मैंने तुरंत ब्रूना को ढूँढना शुरू किया। ब्रूना भी कहीं दिखाई नहीं दे रही थी। अब डर कई गुना बढ़ गया था। अगर एक पिल्ला जहरीली चीज़ खाकर मर सकता है, तो बाकी भी खतरे में हैं। मैं इधर-उधर भागती रही। नाम लेकर पुकारती रही। कहीं कोई जवाब नहीं।

अगली सुबह फिर वही गली। एक और कार अपने पार्किंग से निकल रही थी। जैसे ही कार आगे बढ़ी, नीचे कुछ पड़ा दिखा। मैं लगभग दौड़ती हुई पहुँची। और जो देखा, उसने मुझे तोड़ दिया। वहाँ ब्रूना की डेड बॉडी पड़ी थी।

मेरे आँसू नहीं थम रहे थे। मैं जमीन पर बैठ गई। यकीन नहीं हो रहा था। इतनी प्यारी, समझदार, स्वस्थ कुतिया—जो हमारे साथ खुश रहती थी, जो अपने बच्चों के साथ खेलती थी—अचानक ऐसे कैसे चली गई? अभी कुछ दिन पहले ही तो वह सामान्य हो रही थी।

मैंने फिर डॉक्टर को बुलाया। उन्होंने जांच की। वही बात सामने आई—इसने भी कोई जहरीला पदार्थ खाया है।

अब मेरे भीतर गुस्सा और दुख एक साथ उमड़ पड़े। मेरे मुँह से हाय और श्राप निकलने लगे। मुझे संदेह होने लगा कि कहीं किसी ने जानबूझकर इन्हें कुछ खिलाया तो नहीं? क्या किसी को इनकी मौजूदगी से परेशानी थी? क्या किसी ने इन्हें मारने की कोशिश की?

मैंने मोहल्ले में पूछताछ शुरू की। लोगों को समझाया, पूछा—"किसने ऐसा किया?" किसी ने कुछ नहीं कहा। सबने इंकार किया। कुछ ने सहानुभूति दिखाई, कुछ चुप रहे। लेकिन मुझे जवाब नहीं मिला।

कुछ समय तक मैं खुद जांच-पड़ताल करती रही। उन जगहों को देखा जहाँ वे खाना खाते थे। कचरे के ढेर के पास गई। तभी धीरे-धीरे एक बात समझ आई। ये कुत्ते अक्सर कचरा भी खा लेते थे। चाहे मैं कितना भी अच्छा खाना दूँ, उन्हें कचरे में कुछ नया सूंघने की आदत थी। उसी कचरे में शायद कोई जहरीला पदार्थ पड़ा था—शायद खराब खाना, शायद कोई केमिकल, शायद चूहे मारने की दवा।

जब यह समझ आया, तो मन को थोड़ी संतुष्टि मिली कि शायद किसी इंसान ने जानबूझकर नहीं किया। शायद गलती से ऐसा हुआ। लेकिन दुख कम नहीं हुआ। मेरे पिल्ले और कुत्ते एक-एक करके मरते गए। ब्रूना की खाली जगह हर रोज़ मुझे दिखती थी।

मैंने तय किया कि अब कचरे की समस्या को खत्म करना होगा। स्थानीय लोगों की मदद से मैंने आगे एक डस्टबिन बनवाने के लिए आवेदन दिया। कई बार चक्कर लगाए, बात की, समझाया कि खुला कचरा जानवरों के लिए खतरा है। आखिरकार सीमेंट और ईंट का एक डस्टबिन तैयार हो गया। अब लोग उसी में कचरा डालने लगे।

वह ढक्कन वाला था, ऊँचा था, वहाँ तक कुत्ते आसानी से नहीं पहुँच सकते थे। मेरे दिल को थोड़ा सुकून मिला। कम से कम अब वे खुले कचरे में जाकर कुछ भी नहीं खाएँगे। मैंने खाने-पीने में कभी कमी नहीं रखी थी। फिर भी उन्हें कचरा खाने की आदत हो गई थी। और कचरे में तो कुछ भी हो सकता है—सड़ा हुआ खाना, प्लास्टिक, दवा, केमिकल।

डस्टबिन बनने के बाद गली थोड़ी साफ दिखने लगी। लेकिन मेरे भीतर जो खालीपन बना था, वह तुरंत नहीं भरा। ब्रूना की याद बार-बार आती। उसकी शांत आँखें,

उसका धीरे से रोटी लेना, उसका अपने पिल्लों के साथ खेलना—सब कुछ जैसे सामने घूम जाता।

अब जब भी मैं गली में निकलती, तो कदम पहले से ज्यादा सतर्क होते। हर कोने को देखती, हर कुत्ते को ध्यान से देखती। कहीं कोई असामान्य हरकत तो नहीं। कहीं कोई फिर से बीमार तो नहीं। मैंने सीखा था कि सड़क का जीवन केवल खाना देने से सुरक्षित नहीं होता। हर छोटी चीज़ पर ध्यान देना पड़ता है।

भूरी अब भी थी। वह सब देख रही थी—कुत्तों का आना, जाना, मौत, नए जन्म। और मैं भी थी, हर घटना के बीच खड़ी, कभी मजबूत, कभी टूटी हुई, लेकिन फिर भी अगली सुबह फिर से उसी गली में मौजूद।

"हम सब में एक ही जान है"

कभी-कभी मैं चुप बैठकर सोचती हूँ — क्या सच में हम सब अलग हैं?
या फिर हम सबके भीतर धड़कने वाली वह जान एक ही है?

जब कोई भूखा होता है तो पेट की आग इंसान और जानवर में फर्क नहीं करती। प्यास लगती है तो गला सबका सूखता है। दर्द होता है तो आँखें सबकी नम होती हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि इंसान अपने दर्द को शब्द दे सकता है, और जानवर अपने दर्द को सिर्फ आँखों से कहता है।

हम इंसान खुद को समझदार कहते हैं, क्योंकि हमारे पास दिमाग है, भाषा है, तर्क है। लेकिन क्या सिर्फ बोल पाने से ही हम श्रेष्ठ हो जाते हैं? अगर दिमाग मिला है तो उसके साथ जिम्मेदारी भी तो मिली है। अगर शब्द मिले हैं तो उनके साथ संवेदना भी मिली है। अगर हाथ मजबूत हैं तो उनका काम सिर्फ कमाना नहीं, बल्कि सहारा देना भी है।

सड़क किनारे बैठा एक कुत्ता जब किसी राहगीर को उम्मीद भरी नजरों से देखता है, तो वह भीख नहीं मांगता — वह विश्वास मांगता है। वह पूछता है, "क्या तुम मुझे देख रहे हो? क्या तुम समझ रहे हो कि मुझे भी भूख लगती है?" उसकी आँखों में

कोई छल नहीं होता, कोई शिकायत नहीं होती — बस एक शांत सी उम्मीद होती है।

कई बार मैंने महसूस किया है कि जानवर इंसानों को पहचान लेते हैं। उन्हें पता होता है कि कौन दया से भरा है और कौन पत्थर दिल। शायद इसलिए वे बार-बार उसी इंसान की ओर देखते हैं जिसने एक बार उन्हें पानी दिया हो, जिसने एक दिन उनके सिर पर हाथ फेरा हो। उनके पास शब्द नहीं, पर यादें होती हैं। उनके पास भाषा नहीं, पर भावना होती है।

हम सब में एक जान है — यही बात मुझे बार-बार भीतर से झकझोरती है। जब कोई पशु घायल होता है और कराहता है, तो उसकी आवाज सीधे दिल तक पहुँचती है। वह हमें याद दिलाती है कि दर्द का रंग एक ही होता है। चाहे वह इंसान का हो या किसी बेजुबान का।

कभी गौर कीजिए — एक माँ चाहे इंसान हो या जानवर, अपने बच्चे के लिए एक जैसी बेचैनी महसूस करती है। उसके भीतर भी वही ममता, वही सुरक्षा की भावना होती है। अगर उसके बच्चे को कोई खतरा हो, तो वह अपनी जान तक दाँव पर लगा देती है। यह भावना किसी धर्म, जाति या प्रजाति की मोहताज नहीं है।

हम इंसान अक्सर अपने स्वार्थ में इतने उलझ जाते हैं कि हमें दूसरे जीवों की पीड़ा दिखती ही नहीं। हम सोचते हैं — "यह तो जानवर है।" लेकिन क्या जानवर होना अपराध है? क्या जीवन सिर्फ इंसान के लिए कीमती है? अगर हम सच में बुद्धिमान हैं, तो हमें अपने से कमजोर को सहारा देना चाहिए, न कि उसकी अनदेखी करनी चाहिए।

मैंने कई बार देखा है — जब कोई कुत्ता कई दिनों तक भूखा रहता है और फिर उसे रोटी मिलती है, तो वह उसे सिर्फ खाता नहीं, वह उसे महसूस करता है। उसकी पूँछ हिलती है, आँखों में चमक आ जाती है। वह आभार व्यक्त करता है — अपने तरीके से। वह बोल नहीं सकता, पर उसकी हर हरकत कहती है, "धन्यवाद।"

कभी-कभी लगता है कि असली इंसानियत वही है, जब हम बिना किसी स्वार्थ के किसी जीव की मदद करें। न फोटो, न दिखावा, न नाम — बस एक शांत सी संतुष्टि कि आज हमने किसी की भूख कम की, किसी की प्यास बुझाई, किसी का डर थोड़ी देर के लिए ही सही, कम किया।

हम सब में एक जान है — यह समझ आ जाए तो दुनिया बदल सकती है। फिर कोई पत्थर नहीं मारेगा, कोई अनदेखा नहीं करेगा। फिर सड़क किनारे बैठा पशु भी खुद को अकेला नहीं समझेगा।

भगवान ने हमें दिमाग दिया, सोचने की शक्ति दी। लेकिन क्या हमने उस शक्ति का सही उपयोग किया? अगर हम अपनी सुविधा के लिए किसी जीव को कष्ट देते हैं, तो क्या हम सच में बुद्धिमान हैं? असली बुद्धिमानी तो करुणा में है। असली महानता तो सहानुभूति में है।

जब कोई जानवर हमारी ओर देखता है, तो वह सिर्फ खाना नहीं चाहता — वह अपनापन चाहता है। वह चाहता है कि कोई उसे यह एहसास दिलाए कि वह इस दुनिया में बेकार नहीं है। कि उसका भी इस धरती पर उतना ही हक है जितना हमारा।

मैं मानती हूँ कि हर इंसान सबकी मदद नहीं कर सकता। लेकिन हर इंसान किसी एक की मदद तो कर ही सकता है। एक कटोरी पानी रखना, एक रोटी बाँटना, एक घायल पशु के लिए डॉक्टर बुला लेना — ये छोटे-छोटे कदम हैं, लेकिन किसी के लिए पूरी दुनिया बदल सकते हैं।

कई लोग कहते हैं, "हम क्या कर सकते हैं? सरकार करे, कोई संस्था करे।" लेकिन दया का काम आदेश से नहीं होता, वह दिल से होता है। अगर हम इंतजार करते रहेंगे कि कोई और आगे बढ़े, तो शायद बहुत देर हो जाएगी।

हम सब में एक ही जान है — यही विचार मेरे मन को बार-बार नम कर देता है। जब मैं किसी पशु की आँखों में देखती हूँ, तो मुझे वहाँ डर भी दिखता है और भरोसा भी। डर इस दुनिया से, और भरोसा इंसान से। सवाल यह है — क्या हम उस भरोसे के लायक हैं?

इंसान होना सिर्फ जन्म से नहीं होता, कर्म से होता है। अगर हमारे कर्मों में करुणा नहीं, तो हमारा ज्ञान अधूरा है। अगर हमारे व्यवहार में दया नहीं, तो हमारी सभ्यता अधूरी है।

दुनिया को बदलने के लिए बड़े भाषणों की जरूरत नहीं, छोटे कार्यों की जरूरत है। एक कदम आप बढ़ाएँ, एक कदम मैं बढ़ाऊँ — और शायद धीरे-धीरे यह धरती थोड़ी और दयालु हो जाए।

आखिर में बस इतना कहना चाहूँगी —
जब अगली बार कोई बेजुबान आपकी ओर देखे, तो उसकी आँखों को पढ़ने की कोशिश कीजिए। शायद वह कुछ कह रहा हो। शायद वह सिर्फ इतना पूछ रहा हो — "क्या तुम समझते हो कि हम सब में एक ही जान है?"

और अगर उस पल आपका दिल पिघल जाए, तो समझ लीजिए — इंसानियत अभी जिंदा है।

"भूरी की बदली किस्मत और झबरू का आना"

भूरी की किस्मत जैसे सच में बदल रही थी।
जो कभी सड़कों पर भटकती थी, जिसे कोई अपनापन नहीं देता था, अब वही भूरी पूरे मोहल्ले की प्यारी बन गई थी। लोग उसे नाम से पुकारने लगे थे। बच्चे उसके पास खेलते, औरतें बची हुई रोटियाँ उसके लिए अलग रख देतीं। अब उसे रोज़-रोज़ भटकना नहीं पड़ता था। पेट भर खाना मिलता, थोड़ी छाँव मिलती और सबसे बड़ी बात — अपनापन मिलता।

वह खाती, पानी पीती और चैन से सो जाती। उसकी आँखों में अब पहले जैसा डर नहीं था। उनमें एक सुकून था। जैसे उसे भरोसा हो गया हो कि अब वह अकेली नहीं है।

धीरे-धीरे दिन बीतते गए। मौसम बदला। और एक दिन मैंने महसूस किया — भूरी फिर से माँ बनने वाली है। इस बार मेरे मन में डर कम और उम्मीद ज्यादा थी। मैंने मन ही मन भगवान से प्रार्थना की — "इस बार उसके बच्चों को सुरक्षित रखना।"

समय आया, और भूरी ने फिर बच्चों को जन्म दिया। इस बार सब बच्चे स्वस्थ थे। छोटे-छोटे, मासूम से पिल्ले। उनकी आँखें बंद थीं, पर जीवन से भरे हुए थे। भूरी उन्हें बहुत स्नेह से चाटती, उनके पास से हटती नहीं थी। मैं रोज़ जाकर देखती — सब ठीक है या नहीं।

दिन बीतते गए। बच्चों की आँखें खुलीं। वे डगमगाते कदमों से चलना सीखने लगे। फिर धीरे-धीरे पूरा मोहल्ला उनका खेल का मैदान बन गया। वे कभी एक-दूसरे के पीछे दौड़ते, कभी अपनी माँ की पूँछ पकड़ लेते। उनकी मासूम शरारतें देखकर दिल भर आता था।

भूरी भी इस बार बेफिक्र थी। शायद उसे लगा था कि अब उसके बच्चों के साथ कुछ बुरा नहीं होगा। अब तक सब ठीक था। कोई अनहोनी नहीं हुई थी। वह आराम से बैठकर बच्चों को खेलते देखती रहती।

लेकिन जिंदगी हमेशा एक जैसी कहाँ रहती है…

एक दिन अचानक दूसरे मोहल्ले से बड़े कुत्तों का एक झुंड आया। वे ताकतवर थे, आक्रामक थे। हम समझ ही नहीं पाए कि क्या होने वाला है। देखते ही देखते उन्होंने पिल्लों पर हमला कर दिया।

वह दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने ताज़ा है। भूरी ने पूरी ताकत से अपने बच्चों को बचाने की कोशिश की। वह भौंकी, लड़ी, दौड़ी… हमने भी पत्थर फेंके, शोर मचाया, उन्हें भगाने की कोशिश की। लेकिन झुंड बड़ा था। उनकी संख्या ज्यादा थी।

हम बहुत कोशिश के बाद भी सबको नहीं बचा पाए।

कुछ पिल्ले वहीं खत्म हो गए। कुछ जो थोड़ा बड़े थे, डर के मारे दूसरे मोहल्लों की ओर भाग गए और फिर कभी वापस नहीं आए। शायद उन्होंने वहीं अपना ठिकाना बना लिया होगा। शायद वे जीवित हों… यह सोचकर ही दिल को थोड़ा सुकून मिलता है।

लेकिन भूरी…
वह फिर से अकेली हो गई।

उसकी आँखों में वही पुराना खालीपन लौट आया था। वह कई दिनों तक चुपचाप बैठी रहती। उस जगह को देखती जहाँ उसके बच्चे खेला करते थे। कभी-कभी वह अचानक उठकर उन्हें ढूंढने लगती, जैसे उसे विश्वास ही न हो कि वे अब नहीं हैं।

माँ का दिल आखिर माँ का ही होता है — चाहे इंसान की हो या जानवर की।

लेकिन इस बार फर्क इतना था कि भूरी पूरी तरह अकेली नहीं थी। उसके साथ हम थे। हम उसे सहलाते, उसके लिए खाना लाते, उसके पास बैठते। वह धीरे-धीरे फिर सामान्य होने लगी। शायद उसे समझ आ गया था कि जिंदगी रुकती नहीं।

इसी मोहल्ले में ब्रूना के बच्चे भी रहते थे। वे बड़े हो चुके थे। शांत स्वभाव के थे। किसी को बेवजह भौंकते नहीं थे। पूरे दिन इधर-उधर घूमते, खेलते और शाम को अपने ठिकाने पर लौट आते। उन्हें देखकर लगता था कि अगर माहौल सुरक्षित हो, तो जानवर भी कितने सभ्य और संतुलित रहते हैं।

एक दिन मैंने एक नया चेहरा देखा।

एक चितकबरा कुत्ता, दुबला-पतला, हड्डियाँ साफ दिखाई देती थीं। वह सड़क के उस पार वाले घर के पास रहता था। उसकी हालत बहुत खराब थी। ऐसा लगता था जैसे कई दिनों से उसे पेट भर खाना नहीं मिला हो। उसकी चाल में कमजोरी थी।

वह कचरे के ढेर के पास आकर कुछ ढूंढता। कभी सूखी रोटी का टुकड़ा, कभी कुछ बचा-खुचा। दो दिन तक मैं उसे देखती रही। उसने किसी से कुछ छीना नहीं, किसी पर भौंका नहीं। बस चुपचाप ढूंढता और फिर थका हुआ सा एक किनारे बैठ जाता।

मुझे समझ आ गया — उसे न खाना नसीब है, न पानी।

दिल नहीं माना। मैंने तय किया कि उसके लिए कुछ करना होगा।

सड़क के उस पार एक बड़ा पेड़ है। उसकी छाँव में अक्सर गाय, बैल और दूसरे आवारा पशु खड़े रहते हैं। मैंने वहीं एक बर्तन में पानी भरकर रखना शुरू कर दिया। रोज़ सुबह उसे साफ करती और ताज़ा पानी भर देती। साथ ही थोड़ा खाना भी रख देती।

पहले दिन वह दूर खड़ा देखता रहा। शायद उसे भरोसा नहीं था कि यह सब उसके लिए है। दूसरे दिन वह धीरे-धीरे पास आया। इधर-उधर देखा, फिर पानी पिया। ऐसे पिया जैसे बहुत दिनों बाद किसी ने उसे पानी दिया हो।

मैं उसे देखते हुए सोच रही थी — कितनी छोटी सी बात है, और किसी के लिए कितनी बड़ी।

मैंने उसका नाम रख दिया — "झबरू।"

झबरू धीरे-धीरे मोहल्ले में आने लगा। हैरानी की बात यह थी कि कोई भी कुत्ता उससे लड़ता नहीं था। शायद जानवर भी समझ जाते हैं कि कौन झगड़ालू है और कौन शांत। झबरू बहुत ही शांत प्रवृत्ति का था। वह आता, खाना खाता, पानी पीता और चुपचाप चला जाता।

न वह किसी की जगह छीनता, न किसी पर गुर्राता।

कुछ ही दिनों में वह भी मेरा चहेता बन गया।

जब मैं दूर से आवाज देती — “झबरू…” तो वह गर्दन उठाकर देखता। उसकी आँखों में एक पहचान सी चमकती। वह पास आकर थोड़ी देर बैठ जाता, जैसे धन्यवाद कह रहा हो।

भूरी भी अब उसे स्वीकार करने लगी थी। दोनों के बीच कोई लड़ाई नहीं हुई। जैसे दो टूटे हुए दिल एक-दूसरे की चुप्पी समझ रहे हों।

मोहल्ले की जिंदगी फिर अपने ढर्रे पर चलने लगी। दर्द था, लेकिन उसके साथ अपनापन भी था। भूरी, ब्रूना के बच्चे और अब झबरू — सब इस छोटे से संसार का हिस्सा बन गए थे।

कभी-कभी मैं सोचती हूँ — हम इंसान अगर थोड़ा सा दिल बड़ा कर लें, तो कितनी जिंदगियाँ आसान हो सकती हैं। एक कटोरी पानी, दो रोटियाँ और थोड़ा सा प्यार — बस इतना ही तो चाहिए उन्हें।

भूरी ने मुझे सिखाया कि उम्मीद कभी नहीं छोड़नी चाहिए।
और झबरू ने सिखाया कि हर शांत चेहरा अंदर से कितना भूखा हो सकता है — सिर्फ खाने का नहीं, अपनापन का भी।

मोहल्ले की यह छोटी सी दुनिया मेरे लिए एक पाठ बन गई थी —
जहाँ हर दिन जीवन, संघर्ष और करुणा साथ-साथ चलते थे।

“ एक नई जिम्मेदारी – लूसी और मेरी बढ़ती दुनिया “

कहानी यहाँ से एक नए मोड़ पर आ जाती है।

भूरी और झबरू के साथ मेरी छोटी-सी दुनिया चल ही रही थी कि एक दिन मुझे फिर से एक माँ की आँखों में वही बेचैनी दिखाई दी। वह दूसरी गली में रहती थी। दुबली-पतली, हल्के भूरे रंग की… आँखों में डर भी था और अपनापन भी। उसके साथ उसके चार छोटे-छोटे पिल्ले थे।

मैंने उसका नाम रखा — लूसी।

लूसी अपने बच्चों को लेकर बहुत सजग रहती थी। जैसे ही कोई पास आता, वह हल्की सी आवाज़ निकालकर उन्हें अपने पास समेट लेती। उसकी ममता साफ दिखाई देती थी। वह गली अलग थी, क्योंकि मेरी गली में तो भूरी रहती थी। मैं लूसी को अपने पास नहीं ला सकती थी, क्योंकि भूरी उसे स्वीकार नहीं करती। दोनों के बीच लड़ाई हो जाती।

इसलिए मैंने तय किया — दूरी रहेगी, लेकिन देखभाल में कमी नहीं होगी।

अब मेरी जिम्मेदारी दो जगह बँट गई थी। सुबह भूरी और उसके साथियों का ध्यान रखना, फिर दूसरी गली में जाकर लूसी और उसके पिल्लों को देखना। मैं खाना ले जाती, पानी रखती, उनके बैठने की जगह साफ करती। धीरे-धीरे लूसी भी मुझ पर भरोसा करने लगी। जब मैं आती तो वह भागती नहीं थी। बस चुपचाप मुझे देखती रहती।

लेकिन जिंदगी ने यहाँ भी परीक्षा ली।

एक दिन खबर मिली कि लूसी का एक पिल्ला नहीं रहा। वह छोटा सा पीला पिल्ला… जो सबसे ज्यादा चंचल था… अब चुप पड़ा था। उस दिन मेरा दिल बहुत भारी था। हम उसे दफनाने के लिए गए। सच कहूँ तो थोड़े डर भी गए थे। हर बार जब किसी मासूम को मिट्टी में सौंपती हूँ, तो ऐसा लगता है जैसे दिल का एक टुकड़ा भी वहीं रह गया।

उसे दफनाते समय हमने आसपास देखा — और हमें वहाँ कुछ और पिल्ले भी मिले। बेसहारा, इधर-उधर घूमते हुए। सच में, आप मानेंगे नहीं… हर जगह डॉग्स ही डॉग्स। जैसे पूरी दुनिया में उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी, और जिम्मेदारी भी।

वहीं से मेरी जिंदगी का एक नया अध्याय शुरू हुआ।

अब यह सिर्फ रोज़ दो-चार कुत्तों को खाना खिलाने तक सीमित नहीं रहा। अब यह एक सामाजिक कार्य बन चुका था। मैंने तय किया कि अगर जिम्मेदारी बढ़ रही है, तो व्यवस्था भी बढ़ानी होगी।

मैंने सोशल वर्क शुरू किया। लोगों से मदद माँगनी शुरू की। शुरुआत में झिझक थी — क्या लोग समझेंगे? क्या वे सहयोग करेंगे? लेकिन जब इरादा साफ हो, तो रास्ते खुलते जाते हैं।

धीरे-धीरे लोगों ने साथ देना शुरू किया। डोनेशन आने लगे। कोई सौ रुपए देता, कोई पाँच सौ, कोई चावल की बोरी दे जाता। मैं उन पैसों से चावल की बोरियाँ लाती। बड़े बर्तन में चावल बनाती। उसमें दूध मिलाती, जैसा डॉक्टर ने सलाह दी थी, ताकि पिल्लों को पोषण मिल सके।

कई कुत्तों को खुजली की समस्या होती थी। उनके शरीर पर घाव हो जाते थे। कीड़े पड़ जाते थे। मैं दवाइयाँ लाती, डॉक्टर से पूछकर उनका इलाज करती। कई बार खुद हाथ से मरहम लगाती। शुरुआत में डर लगता था, लेकिन जब उनकी तकलीफ देखती, तो डर पीछे रह जाता।

धीरे-धीरे बदलाव दिखने लगा। जिन कुत्तों की चमड़ी सूख गई थी, उनमें फिर से चमक आने लगी। जो कमजोर थे, वे थोड़ा मजबूत दिखने लगे। उनकी आँखों में थकान की जगह चमक दिखने लगी।

खाने-पीने के मामले में मैंने कभी कमी नहीं रखी। मैं चाहती थी कि कोई भी जानवर भूखा या प्यासा न सोए। चाहे जितना संभव हो, मैं अपना समय और संसाधन लगाती।

लेकिन मेरी सेवा सिर्फ जानवरों तक सीमित नहीं रही।

मैं उन लोगों को भी देखती हूँ जो बेसहारा हैं, लाचार हैं। जो सड़क किनारे बैठे हैं, जिनके पास छत नहीं, जिनके पास सहारा नहीं। जहाँ तक बन पड़ता है, मैं उनकी भी

मदद करती हूँ। फर्क बस इतना है — इंसान अपनी तकलीफ बता सकता है, लेकिन जानवर नहीं।

जानवरों के लिए ज्यादा सोचना पड़ता है। उनकी आँखें पढ़नी पड़ती हैं। उनके व्यवहार से समझना पड़ता है कि उन्हें क्या चाहिए। इसलिए उनका दर्द मुझे और गहराई से छूता है।

मैं जितना समय निकाल पाती हूँ, उतना समय इस काम को देती हूँ। कई बार थकान होती है, कई बार आर्थिक दबाव भी आता है। लेकिन जब कोई पिल्ला दौड़कर मेरे पास आता है, या कोई कुत्ता दूर से पूँछ हिलाता है, तो सारी थकान खत्म हो जाती है।

समय के साथ डॉग्स की संख्या इतनी बढ़ गई कि संभालना मुश्किल लगने लगा। मैं कॉलोनी से बाहर निकलती, तो वहाँ भी डॉग्स मिलते। हर गली में, हर मोड़ पर। और मेरा दिल कहता — "इनका भी ख्याल रखना है।"

अब जब मेरे पास डोनेशन के पैसे आ रहे थे, तो मुझे लगता था कि यह सिर्फ पैसा नहीं है — यह विश्वास है। लोगों ने मुझ पर भरोसा किया है कि मैं इस धन का सही उपयोग करूँगी। इसलिए मैं हर रुपए को जिम्मेदारी से खर्च करती।

कभी-कभी रात को बैठकर सोचती हूँ — यह सब कैसे शुरू हुआ था? सिर्फ एक भूरी से… और आज यह कितनी बड़ी जिम्मेदारी बन गई है।

मैं दिल से धन्यवाद करना चाहती हूँ उन सभी लोगों को, जो इस यात्रा में मेरे साथ जुड़े। जिन्होंने डोनेशन दिया। जिन्होंने भरोसा किया। जिन्होंने कहा — "आप अच्छा काम कर रही हैं, आगे बढ़िए।"

अगर उनका साथ न होता, तो शायद मैं इतनी दूर तक नहीं आ पाती।

आज जब पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो लगता है — यह सिर्फ जानवरों की कहानी नहीं है। यह विश्वास की कहानी है। यह करुणा की कहानी है। यह उस बदलाव की

कहानी है, जो एक इंसान के दिल में शुरू होता है और धीरे-धीरे पूरे समाज को छू लेता है।

मेरी यात्रा अभी खत्म नहीं हुई है। जिम्मेदारियाँ बढ़ी हैं, चुनौतियाँ भी हैं। लेकिन एक बात तय है — जब तक मेरे हाथों में ताकत है और दिल में करुणा है, मैं कोशिश करती रहूँगी।

क्योंकि मैं सच में चाहती हूँ —
कोई भी जानवर भूखा न सोए,
कोई भी प्यासा न सोए,
और जहाँ तक संभव हो —
कोई भी बेसहारा अकेला न रहे।

शाम का समय होता था। सूरज ढल रहा होता, आसमान हल्का नारंगी हो जाता और मैं अपने हाथ में रोटी और थोड़ा सा चावल लेकर गली की ओर निकल पड़ती। यह मेरा रोज़ का नियम था। लोग अपने-अपने कामों में व्यस्त रहते, बच्चे खेलते, कुछ लोग दरवाज़ों पर खड़े बातें करते। और मैं… मैं उन बेआवाज़ प्राणियों की तलाश में रहती जो पूरे दिन किसी के रहम की उम्मीद में भटकते रहते थे।

जब मैं बाहर कुत्तों को खाना देने जाया करती थी, तब लोगों की हरकतें देखा करती थी। आज भी देखती हूँ, ऐसा नहीं है कि सब बदल गया है। कुछ चेहरे बदल जाते हैं, लेकिन सोच वही रह जाती है। लोग बेवजह कुत्तों को परेशान कर देते थे—कभी लात मार देना, कभी पत्थर फेंक देना। जैसे उनके दिल में ज़रा भी करुणा नहीं बची हो। किसी ने यह नहीं सोचा कि शायद वह भूखा है, प्यासा है, पूरे दिन धूप में भटका है। उसके हिस्से में न छत है, न सुरक्षित कोना, न तय समय का भोजन।

सबसे ज़्यादा दर्द तब होता जब कोई छोटे-छोटे पिल्लों को मार देता। वे तो अभी दुनिया को समझ भी नहीं पाए होते। उनकी आँखों में डर साफ़ दिखता था। उनकी माँ दूर खड़ी कांपती हुई देखती, लेकिन कुछ कर नहीं पाती। वह आगे बढ़ती तो उसे भी डंडे से भगा दिया जाता। उस माँ की आँखों में जो बेबसी होती थी, वही मेरी कहानी की शुरुआत बनी—एक अभागी माँ की कहानी।

वह कुतिया अक्सर मेरे घर के पास वाले खाली प्लॉट में रहती थी। मैंने उसका नाम "भूरी" रखा था। भूरी ने कई बार बच्चों को जन्म दिया, लेकिन हर बार उसकी गोद सूनी हो जाती। कभी ठंड से, कभी भूख से, कभी किसी की बेरहमी से। हर बार वह कुछ दिनों तक अपने बच्चों को ढूंढती रहती, मिट्टी सूंघती, उसी जगह बैठी रहती जहाँ उसने उन्हें आख़िरी बार देखा था। उसके चेहरे पर जो खालीपन था, वह शब्दों में नहीं बताया जा सकता।

लोग कहते—"यह तो जानवर है, इसे क्या समझ?"
लेकिन क्या सच में उसे कुछ समझ नहीं आता था?
जब उसके पिल्ले रोते थे तो वह बेचैन हो जाती थी। जब कोई पास आता तो वह अपने शरीर से उन्हें ढक लेती थी। क्या यह ममता नहीं थी? अगर यही भावना किसी इंसान में होती तो उसे माँ कहते, और जब वही भावना एक कुतिया में दिखती है तो लोग उसे पत्थर मारते हैं।

कई बार मैंने देखा कि कुछ लड़के मज़े के लिए पिल्लों को डराते, उन्हें उठा कर दूर फेंक देते। मैं जब टोकती तो हँसते हुए कहते—"आपको इतनी दया आती है तो घर ले जाओ।" जैसे दया करना कोई अपराध हो। जैसे करुणा दिखाना कमजोरी हो। मैं जानती थी, उनसे बहस करके कुछ हासिल नहीं होगा। उनकी सोच उनके बचपन के संस्कारों और संगत से बनी थी। अगर बचपन में उन्होंने जानवरों पर पत्थर मारना सीखा है, तो बड़े होकर भी वही करेंगे।

लेकिन हर इंसान ऐसा नहीं था। कुछ लोग चुपचाप खड़े होकर मुझे खाना खिलाते देखते थे। कुछ धीरे-धीरे पास आकर पूछते—"क्या खिलाना चाहिए?" कुछ बच्चे मेरे साथ रोटी रखने लगे। मुझे लगा, बदलाव पूरी तरह नहीं आया है, पर बीज बोया जा सकता है। अगर एक बच्चा भी सीख जाए कि जानवरों को मारना नहीं, सहलाना चाहिए, तो आने वाले समय में एक संवेदनशील इंसान तैयार होगा।

मैं अक्सर सोचती थी, कर्मों का हिसाब यहीं मिलता है। जो आज बेवजह दर्द देता है, वह किसी न किसी रूप में वही दर्द लौटकर पाएगा। इसलिए मैं लोगों से कहती—

अगर आप खाना नहीं दे सकते, तो मत दीजिए... लेकिन उन्हें चोट मत पहुँचाइए। वे आपकी थाली का हिस्सा नहीं मांग रहे, बस ज़िंदा रहने की जगह मांग रहे हैं।

भूरी की ज़िंदगी संघर्ष से भरी थी। एक बार उसने चार पिल्लों को जन्म दिया। मैंने सोचा, इस बार शायद वे बच जाएँ। मैं रोज़ खाना रखती, पानी भरती। कुछ पड़ोसी भी अब पत्थर नहीं मारते थे। लेकिन एक रात तेज़ बारिश हुई। सुबह जब मैं पहुँची, तो दो पिल्ले ठंड से अकड़े पड़े थे। भूरी उनके पास बैठी थी, उन्हें नाक से हिला रही थी, जैसे जगा रही हो। मेरी आँखों में आँसू आ गए। वह मुझे देख रही थी, जैसे पूछ रही हो—"मैंने क्या गलती की?"

उस दिन मुझे महसूस हुआ कि एक माँ चाहे इंसान हो या जानवर, उसका दुख एक जैसा होता है। फर्क सिर्फ इतना है कि इंसान बोल सकता है, और जानवर चुपचाप सह लेता है। भूरी ने फिर दो बच्चों को संभाला। मैंने और सावधानी रखी। धीरे-धीरे वे बड़े होने लगे। इस बार कुछ बच्चों ने उन्हें सहलाना शुरू किया। शायद मेरे रोज़ के प्रयास का असर था।

काफी ऐसे लोगों से भी सामना हुआ जिनके विचार बिल्कुल उलट थे। वे कहते—"इनको खाना खिलाओगे तो ये बढ़ते रहेंगे।" मैं समझाती कि भूख से मार देना कोई समाधान नहीं। समाधान है नसबंदी, टीकाकरण और सह-अस्तित्व। लेकिन हर कोई समझने को तैयार नहीं होता। उनसे जीतना मुश्किल है, क्योंकि सोच बदलने में समय लगता है। फिर भी, अगर वे हमें अच्छा काम करते देख कर प्रेरित हो जाएँ, तो यही काफी है।

धीरे-धीरे गली का माहौल थोड़ा बदलने लगा। पहले जहाँ पत्थर उठते थे, अब कुछ हाथ रोटी रखने लगे। पहले जहाँ डर था, वहाँ थोड़ी सहानुभूति दिखने लगी। भूरी अब भी संघर्ष कर रही थी, लेकिन पूरी तरह अकेली नहीं थी। उसकी आँखों में अब उतनी घबराहट नहीं दिखती थी। शायद उसे भरोसा हो गया था कि दुनिया में सब बुरे नहीं हैं।

एक दिन भूरी मेरे दरवाज़े के पास आकर बैठ गई। उसके दो बड़े हो चुके बच्चे उसके पीछे-पीछे थे। वह मुझे देख रही थी, जैसे धन्यवाद कह रही हो। उस पल मुझे लगा,

मेरी मेहनत बेकार नहीं गई। अगर एक अभागी माँ की ज़िंदगी में थोड़ा सा सुकून आ पाया, तो यही मेरी जीत है।

समाज एक दिन में नहीं बदलता। लेकिन हर छोटा प्रयास मिलकर बड़ा बदलाव ला सकता है। अगर मेरी इस कहानी को पढ़कर कोई एक व्यक्ति भी यह तय कर ले कि वह किसी जानवर को बेवजह नहीं मारेगा, किसी पिल्ले पर पत्थर नहीं फेंकेगा, तो शायद किसी भूरी की गोद सूनी नहीं होगी।

मेरा काम है लोगों को जागरूक करना, लोगों को इंस्पायर करना। मैं जानती हूँ, हर किसी को नहीं बदल सकती। लेकिन कुछ दिलों में अगर करुणा की चिंगारी जला सकी, तो वही काफी है। क्योंकि एक दिन यही चिंगारी रोशनी बनेगी—और शायद तब कोई अभागी माँ अपने बच्चों को खोने से बचा पाएगी।

बचपन से एक बात अक्सर सुनने को मिलती थी—अगर कुत्ते रोते हैं तो मनहूसियत आती है, अगर रात में उनकी आवाज सुनाई दे तो कोई अनहोनी होने वाली है। मोहल्ले की बुज़ुर्ग औरतें दरवाज़े बंद कर लेती थीं, कुछ लोग आकाश की ओर देखकर डर जाते थे। मैं भी छोटी थी, तो मन में हल्का सा भय बैठ जाता था। लगता था सचमुच कोई अशुभ संकेत है।

लेकिन जब मैंने खुद कुत्तों को खाना देना शुरू किया, उनके बीच समय बिताया, उनकी आँखों में देखा, उनकी हालत समझी—तब जाकर यह भ्रम टूटा। मुझे समझ आया कि वह किसी अनहोनी का संकेत नहीं दे रहे, वे सिर्फ अपनी जरूरत और अपना दर्द जता रहे हैं।

कुत्ते रोते हैं क्योंकि वे भूखे होते हैं। पूरा दिन कूड़े में तलाश करते हैं, इधर-उधर भटकते हैं, कभी कुछ मिलता है, कभी नहीं। जब पेट में आग लगती है तो आवाज निकलती है। अगर उन्हें खाना दे दिया जाए, पानी रख दिया जाए, तो वही कुत्ता थोड़ी देर बाद चुपचाप किसी कोने में गोल होकर सो जाता है। उस समय न कोई रोना होता है, न कोई मनहूसियत।

वे ठंड में भी रोते हैं। सर्दियों की रात में जब जमीन बर्फ जैसी ठंडी हो जाती है, उनके पास न रजाई होती है, न दरवाज़ा। शरीर कांपता है तो वे आवाज करते हैं। गर्मी में भी ऐसा ही होता है—जब सड़क तपती है, जब गला सूखता है, जब छांव नहीं मिलती, तब भी उनकी आवाज तेज हो जाती है। यह कोई नकारात्मक ऊर्जा नहीं, यह जीवित रहने की पुकार है।

कई बार लोग कहते हैं—"देखो, आज फिर कुत्ते रो रहे हैं, कुछ बुरा होगा।" पर मैंने देखा है, वे अक्सर दूसरे मोहल्ले के कुत्तों को अपनी उपस्थिति की सूचना देते हैं। यह उनका तरीका है बताने का कि "हम यहाँ हैं।" जैसे इंसान फोन करके हाल पूछते हैं, वैसे ही वे आवाज से संपर्क बनाए रखते हैं।

कभी-कभी आपने देखा होगा, कोई लोहे की प्लेट या आयरन बजाता है तो कुत्ते अचानक भौंकने या रोने लगते हैं। उन्हें लगता है सामने से भी उनके जैसे किसी पशु की आवाज आ रही है। वे प्रतिक्रिया देते हैं। यह उनका प्राकृतिक व्यवहार है, कोई रहस्य नहीं।

और हाँ, कुछ आवाजें ऐसी भी होती हैं जिनमें दर्द साफ सुनाई देता है। जब उनका साथी मर जाता है, जब कोई पिल्ला खो जाता है, जब उन्हें चोट लगती है—तब उनकी आवाज अलग होती है। वह लंबी, खिंची हुई और भारी होती है। क्या यह संभव नहीं कि वे भी अपनों को याद करके रोते हों? इंसान की तरह उनका भी दिल होता है। फर्क सिर्फ इतना है कि वे शब्दों में नहीं कह सकते।

मैंने आधी रात में भी काम किया है। कई बार फोन आया कि कोई कुत्ता नाली में गिर गया है, कहीं गड्ढे में फंस गया है। मैं बिना समय देखे निकल पड़ी। अंधेरी गलियों में गई, बदबूदार नालियों के पास खड़ी रही, कीचड़ में पैर रखे। अगर सच में कुत्ते मनहूसियत लाते, तो शायद मुझे डर लगता, कोई अजीब आभास होता। लेकिन ऐसा कभी नहीं हुआ।

मुझे वहाँ सिर्फ डर से कांपती आँखें दिखीं, मदद की उम्मीद दिखी। जब उन्हें बाहर निकाला, जब पानी पिलाया, जब खाना दिया—तो वही कुत्ता पूंछ हिलाने लगा। वह कृतज्ञता थी, कोई अपशकुन नहीं।

समस्या कुत्तों के रोने में नहीं है, समस्या हमारी सोच में है। हमने बिना समझे, बिना परिस्थिति जाने, एक धारणा बना ली। पीढ़ी दर पीढ़ी वही बात दोहराई गई और वह सच मान ली गई। किसी ने रुककर यह नहीं सोचा कि शायद यह भी एक जीव है, जिसकी अपनी भाषा है, अपनी ज़रूरतें हैं।

जब तक आप परिस्थितियों को न जान लें, तब तक किसी भी बात पर विश्वास करना या भ्रम फैलाना सही नहीं है। डर फैलाना आसान है, समझ बनाना मुश्किल। लेकिन अगर हम एक बार रुककर सोच लें, तो सच्चाई साफ दिखाई देती है।

कुत्ते न तो मनहूसियत लाते हैं, न नेगेटिव एनर्जी। वे उसी धरती के प्राणी हैं, जिस पर हम हैं। वे भी दर्द महसूस करते हैं, सुकून चाहते हैं, सुरक्षा चाहते हैं। उनका रोना एक संकेत है—उन्हें भोजन चाहिए, पानी चाहिए, साथ चाहिए या बस कोई ऐसा चाहिए जो उन्हें पत्थर न मारे।

इसलिए अपने दिमाग से यह बात निकाल दीजिए कि कुत्तों का रोना अशुभ होता है। अशुभ अगर कुछ है, तो वह है हमारी संवेदनहीनता। शुभ अगर कुछ है, तो वह है किसी भूखे को खाना दे देना, किसी ठिठुरते को आसरा दे देना।

जब हम समझना शुरू करते हैं, तभी समाज बदलता है। और बदलाव की शुरुआत डर से नहीं, करुणा से होती है।

आज भी कई मोहल्लों में कुत्तों को अपने आसपास देखना लोग पसंद नहीं करते। जैसे सड़क पर रहने का हक सिर्फ इंसानों का हो। कुछ जगहों पर उन्हें मारा गया, कुछ जगहों से भगाया गया। उनके रहने की जगह उजाड़ दी गई, जैसे उनका कोई अस्तित्व ही नहीं। लेकिन कोई यह नहीं सोचता कि जहाँ वे पैदा हुए, जहाँ उन्होंने आँखें खोलीं, वही उनका घर बन जाता है।

हम अपने घरों के दरवाज़े उनके लिए नहीं खोलते, यह भी सच है। पर कम से कम सड़क पर तो उन्हें जीने दें। वह सड़क भी उसी धरती का हिस्सा है, जिस पर हम रहते हैं। अगर हम उन्हें अपनाना नहीं चाहते, तो कम से कम उन्हें बेघर तो न करें।

कई बार लोग यह तर्क देते हैं कि “ये गंदगी फैलाते हैं” या “बच्चों को काट लेंगे।” लेकिन क्या हमने कभी यह समझने की कोशिश की कि वे आक्रामक क्यों होते हैं? भूख, डर और लगातार मार खाना—इन तीन चीज़ों से कोई भी प्राणी असुरक्षित और आक्रामक हो सकता है। अगर रोज़ पत्थर खाएगा, डंडा झेलेगा, तो वह विश्वास कैसे करेगा?

फिर भी तस्वीर का एक अच्छा पक्ष भी है। आज के दौर में कुछ लोग समझदार हो गए हैं। वे सिर्फ खाना-पानी ही नहीं देते, बल्कि सर्दियों में बोरी बिछा देते हैं, गर्मियों में पानी के बर्तन रख देते हैं, बारिश में किसी छत के नीचे जगह दे देते हैं। यह छोटी-छोटी चीज़ें हैं, लेकिन किसी बेघर जीव के लिए बहुत बड़ी राहत हैं। यही बदलाव उम्मीद जगाता है।

जहाँ क्रूरता है, वहीं करुणा भी है। फर्क बस सोच का है।

मैं उन ब्रीडर्स से भी कहना चाहती हूँ जो कुत्तों को सिर्फ एक व्यवसाय की तरह देखते हैं। उन्हें खरीदना-बेचना, बार-बार प्रजनन कराना, बच्चों को माँ से अलग कर देना—यह सब सिर्फ मुनाफे के लिए करना गलत है। हर जीव की अपनी गरिमा होती है। उन्हें खुले में सांस लेने दीजिए, उन्हें मशीन मत बनाइए। उनका इस्तेमाल अपने फायदे के लिए मत कीजिए।

कुत्ते हमें सुरक्षा देते हैं। रात में जब पूरा मोहल्ला सोता है, वही जागते रहते हैं। कोई अनजान व्यक्ति आता है तो सबसे पहले वही आवाज करते हैं। कई बार चोरी, लूट जैसी घटनाओं से बचाने में वही आगे खड़े मिलते हैं। यह उनका स्वभाव है—वफादारी।

हाँ, मैं मानती हूँ कि कुछ कुत्ते आक्रामक होते हैं। लेकिन हर आक्रामकता के पीछे कोई कारण होता है। समय पर खाना मिले, साफ पानी मिले, बीमारी का इलाज हो, नसबंदी और टीकाकरण हो—तो वही कुत्ता शांत और फ्रेंडली बन सकता है। जब उसे लगेगा कि यह इलाका उसका है और यहाँ लोग उसे नुकसान नहीं पहुँचाएँगे, तो वह भी लोगों की रक्षा करेगा।

विश्वास दो तरफा होता है। अगर हम उन्हें पत्थर देंगे, तो वे डरेंगे। अगर हम उन्हें सहलाएँगे, तो वे पूंछ हिलाएँगे। अगर हम उन्हें अपनापन देंगे, तो वे जीवन भर वफादार रहेंगे।

कुत्ते दुश्मन नहीं हैं। वे उसी समाज का हिस्सा हैं जिसमें हम रहते हैं। फर्क बस इतना है कि वे बोल नहीं सकते, लिख नहीं सकते, अपनी पीड़ा दर्ज नहीं करा सकते। उनकी आवाज हम तक रोने और भौंकने के रूप में पहुँचती है।

आज जरूरत है संतुलन की—न अंधी नफरत, न अंधा डर। जरूरत है जिम्मेदारी की। अगर हम उन्हें घर में नहीं रख सकते, तो कम से कम सड़क पर जीने दें। अगर हम प्यार नहीं दे सकते, तो कम से कम पत्थर न दें।

समाज की पहचान इस बात से होती है कि वह अपने सबसे कमजोर प्राणियों के साथ कैसा व्यवहार करता है। और कुत्ते, जो सड़क पर रहते हैं, वही हमारे समाज की संवेदनशीलता का आईना हैं। अगर हम उनके लिए जगह बना सके, तो यकीन मानिए, वे भी हमारे लिए अपनी जान तक लगा देंगे।

झबरू के जाने के बाद जैसे कॉलोनी की धड़कन ही थम गई थी।
जहाँ वह हर रोज़ बेफिक्र चाल से घूमता था, वहाँ अब सन्नाटा पसरा रहता था।
सीढ़ियों पर, गली के मोड़ पर, पार्क के किनारे—हर जगह उसकी याद रह गई थी।

ब्रूना के बच्चे भी जैसे अचानक बड़े हो गए हों। पहले वे झबरू के पीछे-पीछे खेलते थे, उसकी मौजूदगी में उन्हें सुरक्षा मिलती थी। अब वे सहमे-सहमे सीढ़ियों पर गोल होकर सो जाते। मैं खाना रखती, तो दूर से देखते रहते, पास आने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। उनकी आँखों में डर था—शायद उन्होंने भी समझ लिया था कि इस दुनिया में भरोसा बहुत जल्दी टूट जाता है।

धीरे-धीरे हालात बदलने लगे। दूसरी गली के कुत्तों ने हमारे बिल्डिंग के नीचे अपनी जगह बनानी शुरू कर दी। जानवरों की दुनिया में खाली जगह ज्यादा दिन खाली नहीं रहती। जहाँ पहले झबरू का हक था, वहाँ अब दूसरे झुंड ने कब्जा कर लिया।

ब्रूना का एक बच्चा किसी और कॉलोनी की तरफ चला गया—शायद बेहतर ठिकाने की तलाश में। दूसरा कुछ दिन और इधर-उधर मंडराता रहा, फिर वह भी दूसरी गली में चला गया।

मैं फिर भी खाना पहुँचाती रही। कभी उस मोड़ पर, कभी दूसरी गली में। मुझे लगता था, अगर मैं उन्हें छोड़ दूँगी तो जैसे उनका अपना कोई भी नहीं रहेगा।

अब बिल्डिंग में अगर कोई पुराना चेहरा बचा था तो सिर्फ भूरी। वही थी जो सीढ़ियों के पास बैठी रहती, जैसे सब कुछ देख रही हो—आना, जाना, बिछड़ना। उसकी आँखों में एक अजीब सी स्थिरता थी, जैसे उसने बहुत कुछ स्वीकार कर लिया हो।

कॉलोनी बदल चुकी थी। चेहरे बदल चुके थे।
पर मेरे भीतर जो जुड़ाव था, वह अब और गहरा हो गया था—क्योंकि एक के बाद एक बिछड़ने ने मुझे सिखा दिया था कि साथ चाहे जितने दिन का हो, जिम्मेदारी और प्यार अधूरा नहीं होना चाहिए।

झबरू के जाने के बाद जो सिलसिला शुरू हुआ, उसने मुझे अंदर तक हिला दिया। एक के बाद एक कुत्तों का मरना मेरे लिए किसी बुरे सपने जैसा था। मैं समझ ही नहीं पा रही थी कि यह सब हो क्या रहा है। क्या यह सिर्फ हादसे थे? क्या यह किस्मत थी? या फिर कुछ और…?

मेरे मन में अजीब-अजीब ख्याल आने लगे थे। मैं रात भर सोचती रहती—क्या किसी ने उन्हें जहर दे दिया? क्या किसी को उनकी मौजूदगी से परेशानी थी? क्या किसी ने नफरत में आकर ऐसा किया? या फिर कोई टोना-टोटका…? दिमाग हर दिशा में भागता था, लेकिन जवाब कहीं नहीं मिलता था।

एक साथ पाँच कुत्तों का चले जाना… यह सामान्य बात तो नहीं थी। मैं खुद से सवाल करती—क्या मैं कुछ समझ नहीं पा रही? क्या मेरी आँखों के सामने कुछ हो रहा है और मुझे दिखाई नहीं दे रहा?

मैंने हार नहीं मानी। मैं लोगों से पूछने लगी। कॉलोनी के हर घर के दरवाज़े तक गई। विनती करके पूछा—"अगर कुत्तों से कोई परेशानी है तो मुझे बताइए। मैं उन्हें मारने नहीं दूँगी। अगर जरूरत पड़ी तो मैं उन्हें कहीं और शिफ्ट कर दूँगी। बस मुझे सच बता दीजिए।"

लेकिन हर तरफ से एक ही जवाब मिला—"हमें कोई दिक्कत नहीं है।"
कई लोग तो खुद उन्हें खाना देते थे। कुछ बच्चे उनके साथ खेलते थे। कुछ बुजुर्ग सीढ़ियों के पास रोटी डाल जाते थे। खुली दुश्मनी जैसा कुछ भी नहीं दिख रहा था।

फिर भी मेरा मन मान नहीं रहा था। शायद इसलिए क्योंकि वे "मेरे" थे। जिनको मैंने रोज़ खिलाया, जिनके नाम रखे, जिनकी आदतें पहचानीं—उनके जाने को मैं सामान्य कैसे मान लेती?

शायद सच्चाई यह थी कि मैं बहुत ज़्यादा जुड़ गई थी। और जब जुड़ाव गहरा होता है, तो हर हादसा साज़िश जैसा लगता है।

उन दिनों मैं बहुत रोया करती थी। बिना किसी को बताए, चुपचाप। कई बार ऐसा लगता जैसे किसी ने मेरे सीने पर पत्थर रख दिया हो। सदमा इतना गहरा था कि मैं घंटों बिस्तर पर पड़ी रहती। रात भर नींद नहीं आती। आँखें बंद करती तो वही चेहरे दिखते—झबरू, ब्रूना के बच्चे, और बाकी सब।

मैं सोचती—क्या मैं उन्हें बचा सकती थी?
क्या अगर मैं और ध्यान देती तो वे जिंदा होते?
क्या मेरी जिम्मेदारी अधूरी रह गई?

ये सवाल मुझे भीतर से तोड़ रहे थे।

फिर एक दिन अचानक जैसे भीतर कुछ बदल गया। मैंने खुद से कहा—"एक दिन तो सबको जाना है। उन्हें भी… हमें भी।" यह स्वीकार करना आसान नहीं था, लेकिन

शायद जरूरी था। हर जिंदगी की एक सीमा होती है। और मैं न तो भगवान हूँ, न किस्मत बदल सकती हूँ।

उस दिन के बाद मैंने ज्यादा सोचना कम कर दिया। मैंने रोना कम किया, लेकिन महसूस करना बंद नहीं किया। फर्क बस इतना आया कि मैंने दुख को काम में बदल दिया।

मैंने तय किया कि अब जितने भी कुत्ते मेरे आसपास हैं, उन्हें जितना हो सके उतना सुरक्षित रखूँगी। अगर उनका जीवन लंबा नहीं कर सकती, तो कम से कम बेहतर तो कर सकती हूँ।

मैंने दवाइयाँ रखना शुरू किया—घाव के लिए, बुखार के लिए, कीड़े-मकोड़ों से बचाव के लिए। किसी को चोट लगती तो तुरंत साफ करके दवा लगाती। किसी को कमजोरी दिखती तो दूध में हल्दी मिलाकर देती। धीरे-धीरे मुझे उनकी छोटी-छोटी तकलीफें समझ में आने लगीं।

मैंने कॉलोनी में उनके लिए छोटा सा टेंट बनाना शुरू किया। बरसात में भीगें नहीं, धूप में झुलसें नहीं—इसका ध्यान रखने लगी। कभी किसी घर के नीचे शेल्टर की व्यवस्था कर देती, कभी किसी खाली कोने में बोरी बिछा देती।

लोगों से भी कहती—"उन्हें अपनाइए। अगर घर में नहीं रख सकते तो कम से कम रोज़ थोड़ा खाना दे दीजिए।"

शुरुआत में कुछ लोग मुस्कुराकर टाल देते थे। लेकिन धीरे-धीरे कुछ बदलाव दिखने लगा। एक घर से रोटी आने लगी, दूसरे से बचे हुए चावल। कोई पानी की बाल्टी रख देता, कोई बिस्किट दे देता।

जब मैं उन्हें खाना देती थी, तो अब कई बार कोई और भी साथ खड़ा होता था।
जब मैं किसी घायल कुत्ते को दवा लगाती, तो कोई पूछ लेता—"कुछ मदद चाहिए?"

मुझे यह देखकर सुकून मिलने लगा।

शायद मेरा दुख ही मेरी ताकत बन गया था। अगर मैं टूटकर बैठ जाती, तो शायद यह बदलाव कभी नहीं आता। लेकिन मैंने अपने दर्द को जिम्मेदारी में बदल दिया।

लोग मुझे देखकर प्रेरित हो रहे थे—यह बात मुझे बाद में समझ आई। कई महिलाएँ कहतीं—"आप रोज़ इतनी मेहनत करती हैं, हमें भी कुछ करना चाहिए।" कुछ बच्चे खुद से पानी रखने लगे।

मुझे अच्छा लगता था, लेकिन उससे भी ज्यादा संतोष इस बात का था कि अब वे अकेले नहीं थे।

अब जब कोई कुत्ता कॉलोनी में दिखता, तो मुझे पहले जैसा डर नहीं लगता था कि पता नहीं कब चला जाएगा। मैंने सीख लिया था कि हर दिन को आखिरी समझकर प्यार करना चाहिए।

हाँ, कभी-कभी रात को पुरानी यादें फिर भी आ जाती थीं। झबरू की चाल, ब्रूना के बच्चों की मासूमियत, वह खाली सीढ़ियाँ… सब कुछ याद आता था। लेकिन अब आँसू के साथ एक संकल्प भी होता था।

मैंने समझ लिया था कि मैं मौत को रोक नहीं सकती, लेकिन उपेक्षा को रोक सकती हूँ।
मैं किस्मत नहीं बदल सकती, लेकिन देखभाल बढ़ा सकती हूँ।
मैं सबको बचा नहीं सकती, लेकिन कोशिश जरूर कर सकती हूँ।

और शायद यही मेरे जीवन का नया अर्थ बन गया—
दर्द से भागना नहीं, उसे दिशा देना।

अब कॉलोनी में कुत्ते सिर्फ "आवारा" नहीं थे। वे पहचाने जाने लगे थे। लोग उनके नाम जानते थे। कोई उन्हें भगाता नहीं था, बल्कि रास्ता देकर निकल जाता था।

मुझे लगता था, अगर झबरू कहीं देख रहा होगा, तो उसे अच्छा लगेगा कि उसके जाने के बाद भी उसकी दुनिया खत्म नहीं हुई—बल्कि और संवेदनशील हो गई।

दुख ने मुझे कमजोर नहीं किया, बल्कि भीतर से मजबूत कर दिया।

और मैंने तय कर लिया—जब तक मैं हूँ, उन्हें अकेला नहीं छोड़ूँगी।

शुरुआत में मुझे लगता था कि मेरा काम बस इतना है कि उन्हें खाना दे दूँ। क्योंकि मैं रोज़ देखती थी—वे दिन-रात भूखे रहते हैं। कभी सूखी रोटी मिल जाती, कभी कूड़े में से कुछ ढूँढ लेते। पानी की भी स्थायी व्यवस्था नहीं थी। गर्मियों में तो हाल और भी बुरा हो जाता था। मुझे लगता था अगर पेट भर जाए तो उनकी सबसे बड़ी समस्या खत्म हो जाएगी।

लेकिन धीरे-धीरे मेरी आँखें खुलने लगीं। खाना ही सब कुछ नहीं था। उनके पास रहने का ठिकाना नहीं था। धूप, बारिश, ठंड—सब कुछ खुली सड़क पर झेलते थे। कोई भी कभी भी उन्हें पत्थर मार देता, डंडा दिखाकर भगा देता। एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहना उनकी मजबूरी थी।

हाँ, मैं जानती हूँ वे कभी-कभी गंदगी भी करते हैं। झुंड में भौंकते हैं। लेकिन क्या यह उनकी प्रकृति नहीं है? अगर उन्हें थोड़ा प्यार, थोड़ा सहारा और सही ट्रेनिंग मिल जाए, तो वे भी समझदार हो सकते हैं। मैंने देखा है—जहाँ रोज़ कोई उन्हें शांत मन से खिलाता है, वहाँ वे कम आक्रामक होते हैं। जहाँ उन्हें अपनापन मिलता है, वहाँ वे पहरेदार बन जाते हैं, समस्या नहीं।

समस्या यह है कि हर कोई जानवरों को पसंद नहीं करता। जो लोग पसंद करते हैं, वे हर परिस्थिति में एडजस्ट करने को तैयार रहते हैं। लेकिन जो नहीं पसंद करते, वे उन्हें मारपीट कर हटाना चाहते हैं। और यही गलत है।

जानवरों के लिए कानून भी बने हुए हैं। उन्हें प्रताड़ित करना अपराध है। लेकिन अधिकतर लोगों को यह पता ही नहीं है। इसलिए मुझे समझ आया कि सिर्फ सेवा

नहीं, जागरूकता भी जरूरी है। लोगों को बताना पड़ेगा कि दया कमजोरी नहीं होती, बल्कि इंसानियत की पहचान होती है।

मैं अपने बच्चों को गोद में लेकर दूर-दूर तक जाया करती थी। जहाँ भी कोई डॉग दिख जाता, उसके लिए खाना ले जाती। कई बार लोग पूछते—"इतनी दूर क्यों जाती हो?"
लेकिन मैं कैसे समझाती कि अगर मैं नहीं जाऊँगी, तो शायद आज वह भूखा सो जाएगा।

धीरे-धीरे मेरा काम सिर्फ खाना देने तक सीमित नहीं रहा। मैंने मेडिकल ट्रीटमेंट शुरू किया। सड़क दुर्घटना में घायल कुत्ते, गाय, बैल—जो भी दिखता, उसे यूँ ही तड़पता छोड़ना अब मेरे बस में नहीं था।

पहली बार जब मैंने किसी घायल कुत्ते को उठाया, तो हाथ काँप रहे थे। डर भी था—दर्द में जानवर काट सकता है। लेकिन उसकी आँखों में जो दर्द था, वह मेरे डर से बड़ा था। मैंने हिम्मत की।

फिर मैंने तय किया कि अब जो भी घायल मिलेगा, उसे इलाज दिलाऊँगी।

इसके लिए मुझे मदद की जरूरत थी। अकेले सब कुछ संभव नहीं था। मैंने मोहल्ले के दो सफाई कर्मचारियों से बात की। उन्हें अपनी सोच बताई। उन्होंने बिना झिझक मेरी मदद के लिए हाँ कह दी।

बड़े जानवरों को उठाना आसान नहीं होता। कई बार ऑटो बुलाना पड़ता, कभी छोटा मालवाहक वाहन। हम मिलकर उन्हें धीरे-धीरे चढ़ाते, संभालते, फिर वेटरिनरी हॉस्पिटल तक ले जाते।

अस्पताल के चक्कर लगाना, पर्ची बनवाना, इंजेक्शन लगवाना, पट्टी करवाना—यह सब अब मेरी दिनचर्या का हिस्सा बन गया था। कई बार लोग हैरानी से देखते—"आप क्यों कर रही हैं यह सब?"

मुझे जवाब देने की जरूरत नहीं लगती थी। क्योंकि मेरे लिए यह काम नहीं, जिम्मेदारी थी।

इलाज के बाद सबसे बड़ी चुनौती होती थी—उन्हें रखना कहाँ है? अस्पताल से सीधे सड़क पर छोड़ देना मुझे सही नहीं लगता था। इसलिए हम कॉलोनी में ही किसी सुरक्षित जगह की तलाश करते।

कभी किसी के घर के बाहर खाली शेड दिख जाता, तो विनती करते—"कुछ दिन के लिए रहने दे दीजिए।"
कभी किसी अधूरे निर्माण वाले हिस्से में थोड़ी जगह मिल जाती।
कभी टीन का छोटा सा सेड बनवा देते, बोरी बिछा देते, पानी की बाल्टी रख देते।

धीरे-धीरे यह एक व्यवस्था बनती गई। जहाँ भी खाली कोना दिखता, हम उसे अस्थायी शेल्टर में बदल देते।

लेकिन मेरा लक्ष्य सिर्फ अस्थायी सहारा नहीं था। मैं चाहती थी कि उन्हें स्थायी और सुरक्षित ठिकाना मिले। ताकि वे रोज़-रोज़ भगाए न जाएँ।

मैं लोगों से बात करती। समझाती कि अगर हम मिलकर योजना बनाएँ, तो कॉलोनी में एक तय स्थान बनाया जा सकता है जहाँ वे रहें। इससे गंदगी भी नियंत्रित रहेगी और लोगों को परेशानी भी कम होगी।

कुछ लोग सहमत होते, कुछ मना कर देते।
मैंने सीखा कि बदलाव एक दिन में नहीं आता।

मैं हमेशा यही कहती—"जिसे पसंद नहीं है, कोई बात नहीं। आप मजबूर नहीं हैं। लेकिन जो मदद करना चाहता है, वह आगे आए।"

धीरे-धीरे कुछ हाथ बढ़ने लगे। कोई दवा के पैसे दे देता। कोई वाहन की व्यवस्था में मदद कर देता। कोई अपने घर के बाहर पानी रख देता।

मुझे महसूस हुआ कि समाज पूरी तरह कठोर नहीं है। बस किसी को पहल करनी होती है।

मैंने यह भी समझा कि सेवा का रास्ता आसान नहीं होता। आलोचना भी मिलती है। लोग ताने भी देते हैं। लेकिन अगर नीयत साफ हो, तो रास्ते बनते जाते हैं।

अब मेरा काम सिर्फ खाना देना नहीं था।
यह एक अभियान बन चुका था—
इलाज, शेल्टर, जागरूकता और सहअस्तित्व का।

मैं चाहती हूँ कि लोग समझें—जानवर समस्या नहीं हैं। हमारी संवेदनहीनता समस्या है। अगर हम उन्हें मारेंगे, भगाएँगे, तो वे और असुरक्षित होंगे। लेकिन अगर हम व्यवस्थित तरीके से उनकी देखभाल करेंगे, तो वे भी शांत और सुरक्षित रहेंगे।

मेरा सपना है कि हर कॉलोनी में कम से कम एक सुरक्षित कोना हो—जहाँ घायल या बेसहारा जानवर कुछ दिन चैन से रह सकें।

मैं अकेली हूँ, लेकिन अकेली नहीं भी हूँ। क्योंकि अब कुछ लोग साथ खड़े हैं।

और मैं आज भी यही कहती हूँ—
जिसे यह काम सही लगता है, वह आगे आए।
जिसे नहीं पसंद, वह कम से कम उन्हें प्रताड़ित तो न करे।

मेरा काम अब एक नियमित जिम्मेदारी बन चुका था। घायल जानवर, भूखे कुत्ते, बेसहारा गाय—इन सबकी सेवा में मैं पूरी तरह लगी रहती थी। दिन कब निकल जाता और शाम कब हो जाती, पता ही नहीं चलता था। लेकिन इस पूरे सफर में एक बात मैंने कभी नहीं छोड़ी—भूरी का साथ।

भूरी सिर्फ एक डॉग नहीं थी, वह मेरी कहानी की गवाह थी। उसने झबरू को जाते देखा था, ब्रूना के बच्चों को बिखरते देखा था, और कॉलोनी के बदलते चेहरे भी।

वह बिल्डिंग के नीचे ही रहा करती थी। कई बार सीढ़ियों के पास, कभी गेट के पास। लोग उसे पहचानते थे, क्योंकि वह अब "अपनी" बन चुकी थी।

घर के अंदर पूरी तरह तो नहीं, लेकिन बिल्डिंग के दायरे में उसका एक सुरक्षित स्थान था। फिर भी मैं जानती थी कि वह अंदर से टूट चुकी थी। उसके पिल्ले अब उसके पास नहीं थे। उसके आसपास पुराने साथी भी नहीं थे। वह अक्सर चुपचाप एक कोने में बैठी रहती, जैसे किसी का इंतज़ार कर रही हो।

मैंने महसूस किया कि जानवर भी डिप्रेशन से गुजरते हैं। उनकी आँखों की चमक कम हो जाती है, खेलने का मन नहीं करता, खाना भी कभी-कभी आधा छोड़ देते हैं। भूरी के साथ भी कुछ ऐसा ही था।

मैं रोज़ उसके पास बैठती। उसे सहलाती। उससे बातें करती, भले वह शब्द न समझती हो, लेकिन एहसास जरूर समझती थी। धीरे-धीरे उसने फिर से थोड़ा खेलना शुरू किया। कभी-कभी जब दूसरी कॉलोनी से कुत्ते आते, तो वह उनके साथ थोड़ी देर दौड़ लगाती। उस समय उसकी पुरानी झलक दिखाई देती थी।

लेकिन जैसे ही वे चले जाते, वह फिर शांत हो जाती।

समय धीरे-धीरे बीतता रहा। मौसम बदले, कॉलोनी में नए चेहरे आए। और एक दिन मुझे महसूस हुआ कि भूरी फिर से माँ बनने वाली है।

यह खबर सुनकर मेरे मन में एक साथ कई भाव आए। खुशी भी, चिंता भी। खुशी इसलिए कि शायद इस बार उसके जीवन में फिर से रौनक लौटेगी। चिंता इसलिए कि पिछली बार की यादें अभी भी ताज़ा थीं।

लेकिन इस बार मैंने मन में तय कर लिया—हम उसे पूरी तरह सपोर्ट देंगे।

भूरी वैसे भी बिल्डिंग के अंदरूनी हिस्से में रहती थी। इसलिए यह हमारे लिए आसान था कि उसके लिए सुरक्षित जगह बनाई जाए। हमने पहले से तैयारी शुरू कर दी।

एक कोने में साफ़-सुथरी जगह चुनी। बोरी बिछाई, ऊपर से पुरानी चादर डाली। पानी की बाल्टी अलग रखी, खाना पौष्टिक देने लगे। डॉक्टर से भी सलाह ली कि गर्भावस्था में क्या ध्यान रखना चाहिए।

मैं चाहती थी कि इस बार कोई कमी न रह जाए।

मैं उसके खाने में दूध, रोटी, कभी-कभी अंडा मिलाती। उसे ज्यादा आराम करने देती। अगर कोई बाहरी कुत्ता ज्यादा पास आ जाता, तो ध्यान रखती कि उसे तनाव न हो।

भूरी में भी बदलाव दिखने लगा था। वह पहले से ज्यादा शांत थी, लेकिन इस बार उसके चेहरे पर एक अलग सी उम्मीद दिखती थी। जैसे उसे भी भरोसा हो कि इस बार वह अकेली नहीं है।

कई बार वह मेरे पीछे-पीछे चलती, जैसे कह रही हो—"तुम हो ना?"

मैं उसके सिर पर हाथ फेरकर कहती—"हाँ, मैं हूँ।"

अब हम सोच रहे थे कि पिल्ले घर के अंदर ही रहेंगे या फिर शेल्टर में अलग सुरक्षित जगह बना देंगे। इस बार उन्हें खुली सड़क पर नहीं छोड़ना था।

मैंने पहले से ही कुछ लोगों से बात कर ली थी—अगर पिल्ले होंगे तो क्या कोई उन्हें अपनाने के लिए तैयार होगा? कुछ लोगों ने हाँ भी कही।

मुझे लगने लगा था कि शायद यह एक नई शुरुआत है।

झबरू के जाने से जो खालीपन आया था, ब्रूना के बच्चों के बिछड़ने से जो दर्द मिला था—शायद भूरी के आने वाले बच्चों से वह थोड़ा भर सके।

लेकिन मैंने अपने मन को संभाला भी। उम्मीद रखनी है, लेकिन डर में नहीं जीना है।

इस बार हमने योजना बनाई थी—

सुरक्षित जगह,
नियमित खाना,
डॉक्टर की निगरानी,
और सबसे जरूरी—साथ।

भूरी अब पहले जैसी अकेली नहीं थी।

उसके आसपास लोग थे जो उसे पहचानते थे, जो उसकी देखभाल कर रहे थे। और सबसे बढ़कर—वह फिर से माँ बनने जा रही थी।

कॉलोनी के उस कोने में जहाँ कभी सन्नाटा छाया रहता था, अब एक नई प्रतीक्षा थी।

और मैं दिल से प्रार्थना कर रही थी कि इस बार किस्मत हमारे साथ हो।

भूरी की देखभाल अब मेरे जीवन की सबसे बड़ी जिम्मेदारियों में से एक बन चुकी थी। वह माँ बनने वाली थी, इसलिए हर छोटी-बड़ी बात पर ध्यान देना जरूरी था। उसका खाना समय पर देना, साफ पानी रखना, आराम की जगह सुरक्षित रखना—सब कुछ हम नियमित रूप से कर रहे थे।

साथ ही बाकी जानवरों के लिए हमारा काम भी जारी था। घायल डॉग्स, गाय-बैल, उनके इलाज, शेल्टर की व्यवस्था—सब चलता रहा। लेकिन इन सबके बीच भूरी मेरे ध्यान का केंद्र बनी हुई थी।

समय तेजी से बीता, और एक दिन वह पल आया जिसका हमें इंतज़ार था। भूरी ने पाँच पिल्लों को जन्म दिया। वह दृश्य आज भी मेरी आँखों में ताज़ा है—छोटे-छोटे, नन्हे, बंद आँखों वाले पाँच जीवन, जो पूरी तरह अपनी माँ पर निर्भर थे।

उस दिन मुझे लगा जैसे हमारी सारी मेहनत सफल हो गई। इस बार सब कुछ सुरक्षित था। वे घर के नीचे थे, निगरानी में थे, और हम पूरी तरह तैयार थे।

हमने पिल्लों की बहुत अच्छे से देखभाल शुरू की। भूरी को पौष्टिक खाना देते, उसे परेशान नहीं होने देते। पिल्ले धीरे-धीरे आँखें खोलने लगे, फिर रेंगना शुरू किया, और कुछ ही हफ्तों में चलने लगे।

उनकी सुरक्षा के लिए हमने कार्डबोर्ड से एक छोटा सा घर बना दिया। अंदर बोरी बिछाई, ऊपर से कपड़ा डाल दिया ताकि ठंड और हवा से बचाव हो सके। वे उसी में रहते, खेलते, सोते।

सब कुछ बहुत व्यवस्थित चल रहा था। इस बार कोई हादसा नहीं हुआ था। कोई बीमारी नहीं, कोई चोट नहीं। मुझे लगने लगा था कि शायद इस बार किस्मत सच में हमारे साथ है।

लेकिन जीवन हमेशा सीधा नहीं चलता।

कुछ समय बाद मैंने महसूस किया कि भूरी का पेट असामान्य रूप से फूलने लगा है। पहले सोचा कि शायद प्रसव के बाद कमजोरी है या सामान्य सूजन है। लेकिन धीरे-धीरे उसका पेट और बड़ा दिखने लगा।

हम तुरंत उसे डॉक्टर के पास लेकर गए। सोनोग्राफी करवाई गई। डॉक्टर ने कुछ दवाइयाँ दीं और कहा कि इलाज चलता रहेगा, घबराने की जरूरत नहीं है।

हमने पूरी लगन से उसकी देखभाल शुरू कर दी। दवाइयाँ समय पर, हल्का खाना, आराम।

लेकिन भूरी का व्यवहार बदलने लगा था। पहले वह साफ-सुथरी रहती थी, एक तय जगह पर ही गंदगी करती थी। अब वह अनियंत्रित हो गई थी। ग्राउंड फ्लोर पर जहाँ रहती थी, वहीं गंदगी करने लगी। कभी-कभी घरों के अंदर भी घुस जाती और वही कर देती।

यह पहले कभी नहीं हुआ था।

मुझे समझ आ रहा था कि यह उसकी बीमारी का असर है। जब शरीर ठीक नहीं होता, तो नियंत्रण भी कम हो जाता है। लेकिन कुछ लोग यह बात नहीं समझ पा रहे थे।

मैं डॉक्टर से बार-बार पूछती—"यह क्यों हो रहा है?" लेकिन स्पष्ट जवाब नहीं मिल पा रहा था।

भूरी खाना भी कम कर चुकी थी। कई बार पूरा दिन बिना खाए पड़ी रहती। अपने पिल्लों के पास लेटी रहती, लेकिन उसमें पहले जैसी ऊर्जा नहीं थी।

फिर भी वह माँ थी। कमजोरी के बावजूद पिल्लों को अपने पास रखती, उन्हें चाटकर साफ करती।

हम उसका इलाज लगातार करवा रहे थे। धीरे-धीरे उसका पेट थोड़ा कम होने लगा था। हमें लगा कि दवा असर कर रही है।

मैंने राहत की साँस ली थी—शायद सब संभल जाएगा।

लेकिन एक दिन ऐसा आया जिसने मुझे अंदर तक तोड़ दिया।

हमारे पड़ोस में एक आंटी रहती थीं। उन्हें पहले भी जानवरों से खास लगाव नहीं था, लेकिन खुलकर विरोध भी नहीं करती थीं।

उस दिन पूरा दिन निकल गया, और मुझे भूरी और उसके पिल्ले कहीं दिखाई नहीं दिए। पहले सोचा शायद किसी कोने में होंगे। फिर लगा शायद बाहर निकल गए होंगे।

लेकिन शाम तक जब वे नहीं दिखे, तो मेरे मन में घबराहट शुरू हो गई।

मैंने हर जगह ढूँढा—सीढ़ियों के नीचे, कार्डबोर्ड वाले घर में, आसपास की गलियों में। कहीं कोई निशान नहीं।

फिर धीरे-धीरे पता चला कि पड़ोस वाली आंटी ने भूरी और उसके पिल्लों को कहीं छुड़वा दिया था।

यह सुनकर जैसे मेरे पैरों तले जमीन खिसक गई।

एक बीमार माँ… पाँच छोटे पिल्ले…
उन्हें कहीं भी छोड़ दिया गया।

बिना बताए।
बिना सोचे।

उस पल मुझे समझ नहीं आया कि ज्यादा दुख किस बात का है—भूरी की बीमारी का, या इस बेरुखी का।

मैं पूरे दिन यही सोचती रही—वे कहाँ होंगे? क्या भूरी उस हालत में अपने बच्चों को संभाल पा रही होगी? क्या पिल्ले भूखे होंगे? क्या उन्हें कोई खतरा तो नहीं?

जिसे हमने इतने प्यार से सुरक्षित रखा, जिसकी बीमारी में साथ दिया—उसे यूँ ही दूर कर दिया गया।

उस दिन मुझे पहली बार महसूस हुआ कि सेवा करना जितना कठिन है, उसे बचाए रखना उससे भी ज्यादा कठिन है।

और मैं वहीं खड़ी थी—खाली कार्डबोर्ड के घर को देखते हुए, जहाँ कभी पाँच नन्ही जानें खेलती थीं।

मैं समझ ही नहीं पा रही थी कि आखिर किसी को परेशानी क्या हो सकती थी।

खाना मैं दे रही थी। इलाज मैं करवा रही थी। गंदगी की सफाई भी मैं ही करती थी। फिर क्यों? किस बात की शिकायत? किस बात की तकलीफ़?

लेकिन सवाल पूछने का समय नहीं था। बिना एक पल सोचे मैं भूरी और उसके बच्चों को ढूँढने निकल पड़ी। जिस पते की जानकारी मिली थी, वहाँ पहुँची। हर गली में झाँका, हर कोने में देखा। लेकिन वे कहीं नहीं मिले।

मैं जानती थी—डॉग्स एक जगह टिककर नहीं रहते, खासकर जब उन्हें नई जगह छोड़ा जाए। वे घबराकर इधर-उधर भटकते हैं। और उस दिन शायद वे भी हमें ढूँढ रहे होंगे, जैसे मैं उन्हें ढूँढ रही थी।

पूरा दिन निकल गया। धूप ढलने लगी। थकान शरीर में उतर चुकी थी, लेकिन मन हार मानने को तैयार नहीं था।

आख़िरकार वे मुझे कोर्ट के परिसर के पास दिखाई दिए। वहीं उन्होंने अपना अस्थायी ठिकाना बना लिया था। भूरी एक कोने में थी, और उसके पिल्ले अलग-अलग दिशाओं में बिखरे हुए।

उन्हें समेटने में ही पूरा दिन लग गया। कोई दीवार के पीछे, कोई झाड़ियों में, कोई गाड़ी के नीचे छिपा था। एक-एक करके मैंने सबको ढूँढा। हर बार जब कोई पिल्ला मिलता, तो जैसे साँस वापस आती।

फिर अचानक भूरी की नज़र मुझ पर पड़ी।

जैसे ही उसने मुझे देखा, वह बिना एक पल रुके मेरी तरफ दौड़ पड़ी। उसकी चाल में कमजोरी थी, लेकिन पहचान में कोई कमी नहीं थी। वह सीधे मेरे पास आकर खड़ी हो गई—जैसे कह रही हो, “तुम आ गई…”

उस पल मेरा दिल भर आया।

मैंने सोचा—ठीक है, यहाँ कोर्ट के पास शेल्टर बने हुए हैं। शायद यही बेहतर हो। यहाँ जगह भी है, छाया भी है। मैं रोज़ खाना और पानी देने आ जाया करूँगी। कम से कम उन्हें बार-बार भगाया तो नहीं जाएगा।

मैंने स्कूटी स्टार्ट की, यह सोचकर कि अब वापस जाऊँ और कल से नियमित आना शुरू करूँगी।

लेकिन भूरी ने मेरा पीछा छोड़ने से इनकार कर दिया।

वह मेरी स्कूटी के पीछे दौड़ने लगी। एक-दो कदम नहीं—लगभग एक किलोमीटर तक। उसकी साँस फूल रही थी, फिर भी वह रुक नहीं रही थी।

और सबसे ज़्यादा जो बात मेरे दिल को चीर गई—वह अपने पिल्लों की परवाह किए बिना मेरे पीछे दौड़ रही थी।

वह सिर्फ घर जाना चाहती थी।

उस पल मेरी आँखों से आँसू अपने आप निकल आए।

मैंने स्कूटी रोक दी। पीछे मुड़कर देखा—भूरी हाँफ रही थी, लेकिन उसकी नज़र मुझ पर ही थी। उसमें कोई शिकायत नहीं थी, सिर्फ लगाव था।

मैं समझ गई—उसे हमसे कितना जुड़ाव हो गया था।

और यह सोचकर मेरे मन में अपराधबोध भी आया। चाहे हमने जानबूझकर नहीं किया, लेकिन वह सड़क पर छोड़ दी गई थी। उसके लिए तो यही सच था—घर छूट गया था।

मैं स्कूटी से उतरी और फुटपाथ पर बैठ गई।

भूरी मेरे पास आकर बैठ गई।

हम दोनों चुप थे। आसपास गाड़ियों की आवाज़ें थीं, लोग आ-जा रहे थे, लेकिन उस पल जैसे दुनिया रुक गई थी।

मैं उसके सिर पर हाथ फेर रही थी। वह मेरी तरफ देख रही थी।

ऐसा लग रहा था जैसे हम दोनों दोस्त हों—जो किसी मुश्किल फैसले पर विचार कर रहे हों।

उसके पिल्ले थोड़ी दूरी पर थे, लेकिन वह बार-बार मेरी तरफ ही देख रही थी।

उसकी आँखों में साफ़ था—उसे घर जाना है।

मैं सोच रही थी—क्या करूँ?
उसे वापस ले जाऊँ?
फिर वही लोग नाराज़ होंगे?
या उसे यहीं छोड़ दूँ और रोज़ आकर देखभाल करूँ?

दिल और दिमाग की लड़ाई चल रही थी।

दिल कह रहा था—"ले जाओ इसे। यह तुम्हें चुन रही है।"
दिमाग कह रहा था—"फिर से विवाद होगा।"

लेकिन उस फुटपाथ पर बैठी भूरी ने मुझे एक बात सिखा दी—
जानवर शब्दों से नहीं, भरोसे से जुड़ते हैं।

वह अपने बच्चों को भी उस पल भूल गई थी, क्योंकि उसके लिए सुरक्षित जगह वही थी जहाँ अपनापन था।

मैंने उसकी आँखों में देखा।

वह कुछ नहीं बोल रही थी, लेकिन सब कह रही थी।

और मैं वहाँ बैठी यही सोच रही थी—अब आगे क्या करना है…

फुटपाथ पर बैठे-बैठे अचानक मेरे दिमाग में एक प्लान आया। ऐसा प्लान कि अगर किसी को पता चले तो सच में सबका दिमाग हिल जाए।

मैं समझ चुकी थी कि अब भूरी और उसके पिल्लों को वापस कॉलोनी में नहीं ले जा सकती। वहाँ फिर वही विरोध, वही तनाव, वही अनिश्चितता। भूरी की हालत भी ठीक नहीं थी। मुझे उसे सुरक्षित जगह देनी ही थी—चाहे कुछ भी करना पड़े।

तभी मैंने तय कर लिया—मैं इन्हें अपने मायके ले जाऊँगी।
मेरा मायका 170 किलोमीटर दूर था। गाँव में खुली जगह है, खेत हैं, आँगन है। कम से कम वहाँ कोई उन्हें भगाएगा नहीं।

लेकिन कैसे?

यह सवाल दिमाग में घूम रहा था। फिर मैंने तुरंत एक रेंट की गाड़ी वाले भैया को फोन किया। उनसे पहले भी कभी बात हुई थी। मैंने बिना ज्यादा विस्तार में जाए कहा—“भैया, मुझे तुरंत गाड़ी चाहिए। मुझे एक डॉग और उसके पिल्लों को अपने गाँव ले जाना है। बहुत जरूरी है।”

उन्होंने एक पल सोचा, फिर बोले—“ठीक है, बड़ी गाड़ी लेकर आता हूँ।”

मैंने अपने पति को भी नहीं बताया। न जाने क्यों, लेकिन मुझे लगा अगर पहले बता दूँगी तो बहुत सवाल होंगे, शायद रोक भी दिया जाए। उस समय मेरे पास समझाने का समय नहीं था।

आधे घंटे के अंदर गाड़ी आ गई।

हमने भूरी और उसके पिल्लों को पीछे की तरफ बैठाया। बड़ी गाड़ी थी, तो थोड़ा स्पेस था। पिल्लों को एक साथ रखा, नीचे बोरी और कपड़ा बिछा दिया। भूरी को समझाया, सहलाया। वह मुझे देख रही थी—जैसे भरोसा कर रही हो कि मैं उसे फिर कहीं नहीं छोड़ूँगी।

फिर मैं जल्दी से कॉलोनी पहुँची। घर से कुछ जरूरी सामान उठाना था।

सब कुछ बहुत तेजी से हुआ। मैंने सूटकेस में कुछ कपड़े डाले। दवाइयाँ रखीं—भूरी की दवाइयाँ भी। बरसात का मौसम था, इसलिए कंबल और कुछ मोटे कपड़े भी रख लिए।

अपनी बेटी को जल्दी से तैयार किया। वह समझ नहीं पा रही थी कि क्या हो रहा है, लेकिन चुपचाप तैयार हो गई।

फिर मैंने पति को बताया—"मैं मायके जा रही हूँ।"

वह एकदम सन्न रह गए।
"अचानक? क्या हुआ?"
सवाल पर सवाल।

मैंने कुछ नहीं बताया। बस इतना कहा—"इमरजेंसी है, बाद में सब बता दूँगी।"

वह गाड़ी तक आए। ड्राइवर भैया से बात की—"कहाँ से बुक की?"
मैंने फिर वही कहा—"सब बता दूँगी बाद में।"

उन्होंने गाड़ी के अंदर झाँका, लेकिन पिल्ले पीछे नीचे बैठे हुए थे, इसलिए उन्हें दिखाई नहीं दिए।

और फिर हम निकल पड़े।

170 किलोमीटर का सफर आसान नहीं था—खासकर डॉग्स के लिए। वे ट्रैवल फ्रेंडली नहीं होते, खासकर जब उन्होंने पहले कभी सफर न किया हो।

मैंने पहले से कुछ पॉलीथिन और कपड़े रख लिए थे, क्योंकि मुझे अंदेशा था कि वे उल्टी कर सकते हैं।

और वही हुआ।

कुछ ही दूरी पर भूरी को उल्टी हो गई। पिल्ले घबरा गए। गाड़ी में हलचल हो गई। मेरा दिल धड़कने लगा, लेकिन मैंने खुद को संभाला। ड्राइवर भैया ने गाड़ी साइड में लगाई। हमने साफ किया।

मैंने उन्हें ज्यादा खाना नहीं दिया था। बस थोड़ा पानी और कुछ बिस्किट। लेकिन वे खा भी नहीं रहे थे। डर, नई जगह, गाड़ी की आवाज़—सब उनके लिए नया था।

भूरी बार-बार मेरी तरफ देखती। जैसे पूछ रही हो—"अब कहाँ ले जा रही हो?"

मैं उसके पास झुककर धीरे से बोलती—"बस थोड़ा सा और... अब सुरक्षित जगह चल रहे हैं।"

रास्ते भर मेरा ध्यान दो हिस्सों में बँटा था—एक बेटी पर, एक भूरी और उसके पिल्लों पर।

बारिश भी शुरू हो गई थी। सड़क गीली थी। मौसम ठंडा हो गया था। मुझे डर था कि कहीं पिल्लों को ठंड न लग जाए। इसलिए मैंने उन्हें कपड़े से ढक दिया।

भूरी की दवाइयाँ भी मैंने साथ रख ली थीं। टाइम देखकर उसे दवा दी। वह कमजोर थी, लेकिन शांत थी।

गाड़ी की खिड़की से बाहर देखते हुए मैं सोच रही थी—गाँव पहुँचकर क्या होगा?

मैंने अपने मायके में भी किसी को नहीं बताया था कि मैं डॉग्स लेकर आ रही हूँ। उनके लिए भी यह किसी शॉक से कम नहीं होगा। अचानक बेटी, सामान और साथ में एक बीमार कुतिया और पाँच पिल्ले!

लेकिन उस समय मेरे लिए सबसे जरूरी था—उनकी सुरक्षा।

अगर मैं किसी को पहले बता देती, तो शायद मना कर देते। शायद डर जाते। इसलिए मैंने सोचा—पहले पहुँच जाऊँ, फिर समझाऊँगी।

रास्ता लंबा था। हर किलोमीटर के साथ मेरे मन में घबराहट भी बढ़ रही थी और दृढ़ता भी।

मैंने पीछे मुड़कर देखा—पिल्ले एक-दूसरे से सटे हुए थे। भूरी उनींदी सी बैठी थी, लेकिन उसकी नज़र मुझ पर थी।

उस नज़र में सवाल नहीं था—सिर्फ भरोसा था।

और उसी भरोसे ने मुझे मजबूत बनाए रखा पूरे 170 किलोमीटर तक।

लगभग चार घंटे के लंबे और थका देने वाले सफर के बाद हम गाँव पहुँच गए। जैसे ही गाड़ी आँगन के बाहर रुकी, घर के लोग बाहर आ गए। मेरी बेटी उस समय बहुत छोटी थी, इसलिए उसे देखने और गोद में लेने के लिए सब उत्साहित रहते थे।

सबको लगा होगा कि मैं अचानक मायके आई हूँ, तो कोई खास वजह होगी। लेकिन किसी को अंदाज़ा नहीं था कि मैं अकेली नहीं आई हूँ… मेरे साथ भूरी और उसके पाँच पिल्ले भी आए हैं।

जैसे ही गाड़ी का पिछला दरवाज़ा खुला और अंदर से डॉग्स दिखाई दिए, सबके चेहरे बदल गए।
“ये क्या है?”
“तू कुत्ते लेकर आई है?”

“अचानक?”

सब हैरान थे।

उधर सफर लंबा था, रास्ते में उल्टी भी हुई थी, तो गाड़ी में थोड़ी गंदगी हो गई थी। लेकिन ड्राइवर भैया सच में बहुत समझदार निकले। उन्होंने बिना कुछ कहे खुद ही सफाई शुरू कर दी। मेरे भाई ने भी उनका हाथ बँटाया।

मैंने भैया को पैसे दिए और दिल से धन्यवाद किया। उन्होंने मेरी स्थिति को समझा। अक्सर रेंटल कार वाले कुत्तों को बैठाने से भी मना कर देते हैं, गंदगी के डर से। लेकिन यहाँ गंदगी हो जाने के बाद भी उन्होंने एक शब्द नहीं कहा। उल्टा खुद ही साफ कर दिया।

रात हो चुकी थी, और उन्हें अपनी कार वापस बुकिंग पर देनी थी, इसलिए वे तुरंत निकल गए। मैं उन्हें जाते हुए देख रही थी—मन में उनके लिए सम्मान था।

अब बारी थी घरवालों के सवालों की।

जैसे ही मैं अंदर गई, सबने एक साथ पूछना शुरू कर दिया—
“कहाँ से लाई?”
“क्यों लाई?”
“यहाँ कैसे रहेंगे?”

मैंने गहरी साँस ली और पूरी कहानी शुरू से अंत तक सुना दी—भूरी की बीमारी, पिल्लों का जन्म, कॉलोनी की स्थिति, उन्हें हटाया जाना, कोर्ट के पास मिलना, और फिर मेरा फैसला।

घर में सन्नाटा छा गया।

कुछ देर तक सब चुप रहे। शायद वे समझने की कोशिश कर रहे थे कि मैंने यह सब बिना बताए कैसे कर दिया।

गाँव में जगह की कमी नहीं थी। आँगन बड़ा था, पीछे खुला हिस्सा था, शेड बने हुए थे। इसलिए जगह की समस्या तो नहीं थी।

लेकिन पिल्ले नए माहौल से घबराए हुए थे। जैसे ही उन्हें नीचे उतारा गया, कुछ इधर-उधर भाग गए। एक तो लकड़ी के बने हुए ढेर के नीचे घुस गया। इतना अंदर चला गया कि बाहर आने का नाम ही नहीं ले रहा था।

बारिश हो रही थी। बादल गरज रहे थे। बिजली चमक रही थी।

शायद सफर की थकान, नया माहौल, बारिश की आवाज़—सब मिलकर उन्हें डरा रहे थे।

मैंने सबसे पहले सभी को खाना दिया। भूरी को दवा भी दी। पिल्लों के सामने कटोरी रख दी। जो बाहर थे, उन्होंने थोड़ा-थोड़ा खा लिया।

लेकिन जो लकड़ी के ढेर के नीचे घुस गया था, वह बाहर ही नहीं आया।

मैंने झुककर देखा, उसे पुकारा, हाथ आगे बढ़ाया। लेकिन वह और अंदर सरक गया।

मैंने सोचा—डर गया है। नया माहौल है। थोड़ी देर में खुद ही बाहर आ जाएगा। खाना पास में रख दिया है, भूख लगेगी तो खा लेगा।

बारिश तेज थी, लेकिन सब शेड के नीचे थे। कोई भी भीग नहीं रहा था। जगह सुरक्षित थी।

उस पल मुझे लगा—चलो, मैंने इन्हें बचा लिया। अब ये यहाँ सुरक्षित हैं।

सफर की थकान भी थी, मन का बोझ भी थोड़ा हल्का हो गया था। इतने दिनों की भागदौड़, चिंता, तनाव के बाद पहली बार लगा कि अब शायद सब ठीक हो जाएगा।

भूरी अपने पिल्लों के साथ लेट गई। वह शांत थी। शायद उसे भी लगा कि अब कोई खतरा नहीं है।

मैंने आखिरी बार सबको देखा—कटोरियाँ रखी हैं, दवा दे दी है, शेड सुरक्षित है। लकड़ी के ढेर के नीचे जो पिल्ला था, वह अभी भी वहीं था। मैंने मन में सोचा—सुबह देख लूँगी। अभी बारिश है, अँधेरा है, उसे जब भरोसा होगा खुद ही निकल आएगा।

और बहुत दिनों बाद, मैं चैन की नींद सो गई।

मुझे लगा था कि अब सब सामान्य हो जाएगा…
लेकिन कहानी अभी यहीं खत्म नहीं हुई थी।

अगली सुबह जब मेरी आँख खुली तो सबसे पहले मैं बाहर भागी। रात भर बारिश हुई थी, लेकिन मन में एक सुकून था कि अब वे सुरक्षित हैं।

आँगन में पहुँची तो दृश्य सामान्य लग रहा था। पिल्ले इधर-उधर भाग रहे थे, कभी एक-दूसरे को काटने की कोशिश करते, कभी मिट्टी में लोटते। भूरी भी पहले से हल्की दिख रही थी। कभी सीढ़ियों पर बैठ जाती, कभी आँगन में घूमती।

गाँव का खुला स्पेस उन्हें सूट कर रहा था। यहाँ गाड़ियाँ नहीं आती थीं, सड़क दूर थी। कोई पत्थर मारने वाला नहीं, कोई भगाने वाला नहीं। उस पल मुझे लगा—मैंने सही फैसला लिया।

लेकिन तभी मेरे मन में एक झटका सा लगा।

एक पिल्ला दिखाई नहीं दे रहा था।

वही पिल्ला… जो कल रात लकड़ी के ढेर के नीचे घुस गया था।

मैंने इधर-उधर देखा। बाकी चार खेल रहे थे। भूरी भी शांत थी। लेकिन वह एक… कहीं नहीं दिखा।

दिल की धड़कन तेज हो गई।

मैं लकड़ी के ढेर के पास गई। झुककर अंदर झाँका। वह अंदर ही पड़ा था। बिल्कुल स्थिर।

मैंने उसे आवाज़ दी। कोई हलचल नहीं।

मैंने लकड़ी हटवाई। बहुत कोशिश के बाद उसे बाहर निकाला।

जैसे ही उसे हाथ में लिया, मुझे समझ आ गया—वह नहीं रहा।

उसका छोटा सा शरीर ठंडा हो चुका था। आँखें बंद थीं। जैसे गहरी नींद में हो।

मेरे हाथ काँपने लगे।

यह कैसे हो सकता है?

कल रात सब ठीक था। खाना रखा था। शेल्टर सुरक्षित था। बारिश से बचा हुआ था।

फिर क्या हुआ?

शायद सफर का सदमा…
170 किलोमीटर का लंबा रास्ता…
नई जगह…
बारिश…
बिजली की कड़कड़ाहट…
वह पहले से डरा हुआ था। लकड़ी के ढेर के नीचे घुसा रहा। शायद पूरी रात बाहर नहीं निकला। शायद डर इतना बढ़ गया कि उसका छोटा सा दिल सहन नहीं कर पाया।

सदमे में उसकी मौत हो गई।

मैंने पहली बार ऐसा केस देखा था—जहाँ सिर्फ घबराहट, डर और मानसिक तनाव से एक नन्ही जान चली जाए।

मेरे अंदर कुछ टूट गया।

मैंने सोचा था कि मैं इन्हें बचा लाई हूँ।
लेकिन एक को नहीं बचा पाई।

आँसू अपने आप बहने लगे।

भूरी पास आकर खड़ी हो गई। उसने पिल्ले को सूँघा। कुछ पल तक उसे देखती रही। फिर धीरे से बैठ गई।

वह चीखी नहीं। भौंकी नहीं।
बस चुप हो गई।

शायद माँ समझ गई थी।

बाकी पिल्ले खेल रहे थे। उन्हें अभी समझ नहीं था कि उनका एक भाई अब उनके साथ नहीं है।

मैं जमीन पर बैठ गई। उस छोटे से शरीर को गोद में लेकर।

मन में बार-बार वही सवाल—
क्या अगर मैं उसे रात में ही बाहर निकाल लेती?
क्या अगर मैं और ध्यान देती?

लेकिन सच्चाई यह थी—कभी-कभी हम पूरी कोशिश के बाद भी हर जान नहीं बचा पाते।

वह पहला मौका था जब मैंने देखा कि सिर्फ डर भी जान ले सकता है।

उस दिन गाँव का खुला आँगन भी मुझे भारी लगने लगा।

मैंने उसे प्यार से दफनाया। छोटी सी जगह चुनी। मिट्टी डालते समय हाथ काँप रहे थे।

यह सफर सुरक्षा के लिए शुरू हुआ था…
लेकिन उसने मुझे सिखाया कि हर बदलाव, हर नया माहौल, हर डर—छोटे दिलों पर कितना असर डाल सकता है।

मैंने उस दिन एक और सच स्वीकार किया—

सेवा करने का मतलब यह नहीं कि हर अंत टाला जा सकता है।

कुछ विदाइयाँ अचानक होती हैं।
और बहुत गहरा निशान छोड़ जाती हैं।

सुबह का दर्द अभी पूरी तरह थमा भी नहीं था। एक पिल्ले की कमी मुझे हर पल महसूस हो रही थी। जहाँ पाँच छोटे-छोटे साये दौड़ते थे, अब चार थे।

लेकिन भूरी… वह अपनी ही बीमारी से जूझ रही थी। उसके लिए शायद यह सब समझने की फुर्सत नहीं थी। वह कभी धूप में बैठ जाती, कभी छाँव में लेट जाती। उसके शरीर में कमजोरी साफ दिखती थी।

मुझे और परिवार को उस एक पिल्ले की कमी खल रही थी, पर ज़िंदगी रुकती नहीं।

पूरा दिन शांत बीता। पिल्ले खेलते रहे। कभी एक-दूसरे के कान पकड़ते, कभी मेरी चप्पल उठा कर भाग जाते। भूरी भी कभी-कभी उठकर उन्हें देखती, फिर थककर बैठ जाती।

मैंने सोचा—शायद अब सब धीरे-धीरे सामान्य हो जाएगा।

लेकिन शाम होते-होते एक और तूफान तैयार था।

गाँव का माहौल खुला था। दीवारें बहुत ऊँची नहीं थीं। पड़ोस में मुर्गियाँ पाली जाती थीं। भूरी ने शायद अपने जीवन में कभी मुर्गी नहीं देखी थी। शहर में वह कूड़े, बची-खुची रोटियों और सड़क के खाने पर पली थी।

शाम के वक्त वह आँगन से निकलकर पड़ोस की तरफ चली गई। पिल्ले भी पीछे-पीछे।

उसी दौरान उसकी नजर पहली बार उन मुर्गियों पर पड़ी।

मुर्गियाँ दाने चुग रही थीं। पंख फड़फड़ा रही थीं। उनकी हलचल, उनकी आवाज़—सब कुछ एक शिकारी प्रवृत्ति को जगाने के लिए काफी था।

कुत्ते के भीतर की मूल प्रवृत्ति… शिकार करना।

भूरी शायद समझ ही नहीं पाई कि यह गलत है। उसके लिए वह बस एक चलती-फिरती चीज़ थी।

एक झपट्टा।
फिर दूसरा।

पिल्ले भी उत्साह में उसके साथ हो लिए।

जब तक हमें खबर लगी, तब तक देर हो चुकी थी।

पड़ोसी जोर-जोर से चिल्ला रहे थे—
"अरे पकड़ो!"
"तुम्हारी कुतिया ने हमारी मुर्गियाँ मार दीं!"

मैं भागकर वहाँ पहुँची। सामने का दृश्य देखकर दिल बैठ गया।

दो-तीन मुर्गियाँ जमीन पर पड़ी थीं। कुछ घायल थीं।

पड़ोसी गुस्से से लाल थे।

"ये क्या तमाशा है?"
"कुत्ते पालोगी तो संभाल कर रखो!"
"हमारा नुकसान हुआ है!"

बातों से बात बढ़ती गई। आवाज़ें ऊँची होती गईं। गाँव में झगड़ा छिपता नहीं, फैलता है। कुछ और लोग भी इकट्ठा हो गए।

मुझे समझ आ गया था—गलती हो चुकी है।

मैंने हाथ जोड़कर कहा,
"मैं भरपाई कर दूँगी। जितना नुकसान हुआ है, मैं पैसे दे दूँगी। अभी आप शांत हो जाइए।"

लेकिन गुस्सा तुरंत शांत नहीं होता।

"पैसों से सब हो जाता है क्या?"
"आज मुर्गी खाई है, कल बच्चे को काट लेगी!"

ये शब्द सुनकर मेरे अंदर फिर एक डर जाग गया।

भूरी पहले से बीमार थी। उसका इलाज चल रहा था। अगर लोग उसे खतरा मानने लगेंगे तो बात और बिगड़ सकती थी।

मैंने समझाने की कोशिश की—
"उसने पहली बार मुर्गियाँ देखी हैं। हमने उसे कभी ऐसा सिखाया नहीं। वह सड़क की कुतिया है, गाँव का माहौल नया है। उसे फर्क नहीं पता।"

सच भी यही था।

किसी जानवर को अगर बचपन से ट्रेनिंग न दी जाए तो वह अपनी सहज प्रवृत्ति से ही चलता है। भूरी ने कभी मुर्गियाँ देखी ही नहीं थीं। उसके लिए वह बस एक शिकार थी।

रात तक माहौल तनावपूर्ण रहा।

मैं अंदर से टूट रही थी। एक दिन पहले पिल्ला खोया था। अब यह नया संकट।

घर वाले भी परेशान थे—
“देखा? हमने कहा था न मुश्किल होगी।”

लेकिन मैं जानती थी—अगर मैं डरकर पीछे हट जाऊँ, तो भूरी का क्या होगा?

मैंने तय किया कि अब से उन्हें बाँधकर नहीं, लेकिन नियंत्रित जगह में रखूँगी। दीवारें ऊँची करवानी होंगी। पड़ोसियों से संबंध खराब नहीं होने देने।

रात को जब सब शांत हुआ, मैं भूरी के पास बैठी।

वह सामान्य थी। उसे अंदाज़ा नहीं था कि उसने क्या किया है।

वह मेरी तरफ देख रही थी—वैसी ही भरोसे वाली आँखों से।

मुझे लगा, इंसान और जानवर के बीच यही फर्क है।
हम सामाजिक नियमों से चलते हैं।
वे सहज स्वभाव से।

गलती उसकी थी…
लेकिन इरादा नहीं था।

मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा।

आज समझ में आया कि सिर्फ बचा लेना काफी नहीं होता।
जिम्मेदारी उससे कहीं बड़ी होती है।

एक जान बचाने के साथ-साथ समाज के बीच संतुलन भी बचाना पड़ता है।

उस रात मैं बहुत देर तक जागती रही।

एक तरफ भूरी की बीमारी, एक पिल्ले की मौत।

दूसरी तरफ पड़ोसियों का गुस्सा।

मुझे एहसास हो रहा था—यह सफर आसान नहीं होने वाला।

अगले दिन सुबह मैं खुद पड़ोसियों के घर गई। हाथ में पैसे थे, मन में विनम्रता।

मैंने कहा, "आपका जितना नुकसान हुआ है, मैं पूरा दे रही हूँ। उसे माफ कर दीजिए। उसे समझ नहीं है। वह शहर में पली है, उसने कभी मुर्गियाँ देखी ही नहीं थीं।"

उनका गुस्सा पूरी तरह तो शांत नहीं हुआ, लेकिन पैसे लेने के बाद बात ठंडी पड़ गई। गाँव में व्यवहार ही सबसे बड़ा समाधान होता है। मैंने महसूस किया—जिम्मेदारी लेना बहुत जरूरी है, वरना एक छोटी घटना रिश्तों में दरार डाल देती है।

उस दिन मैं बाज़ार गई और एक मजबूत चैन खरीद लाई।

दिल पर पत्थर रखकर भूरी को बाँध दिया।

जब मैंने उसके गले में चैन डाली, वह मेरी तरफ देखने लगी। उसकी आँखों में सवाल था—"मैंने क्या किया?"

मैं जानती थी, वह नहीं समझ सकती।

लेकिन अब मुझे समझना था।

उसे बाँधना मेरी मजबूरी थी। मैं नहीं चाहती थी कि वह फिर किसी के आँगन में घुसे और कोई बड़ा झगड़ा खड़ा हो जाए। गाँव में बात जल्दी फैलती है, और जानवरों के खिलाफ माहौल बनते देर नहीं लगती।

मैंने उसके लिए खाने की पूरी व्यवस्था कर दी।
सुबह दूध-रोटी।

दोपहर में चावल या रोटी।
शाम को दवा के साथ खाना।

इलाज में कोई कमी नहीं छोड़ी।

मैं तीन दिन गाँव में रुकी। इस दौरान मैंने दो डॉक्टर लगा दिए—एक लोकल पशु-चिकित्सक और दूसरे पास के कस्बे से बुलाकर। मैं चाहती थी कि उसकी बीमारी पूरी तरह ठीक हो जाए।

दवा समय पर दी।
जख्म साफ किए।
पिल्लों को भी देखभाल दी।

गाँव की खुली हवा में वह थोड़ी बेहतर लगने लगी थी।

शहर की सड़कें, गाड़ियों का शोर, पत्थर फेंकने वाले लोग—यह सब अब नहीं था। यहाँ खुला आँगन था। मिट्टी थी। धूप थी।

पिल्लों को खेलने के लिए पूरा आँगन मिल गया था। वे दौड़ते, कूदते, कभी छाँव में लेट जाते। उनकी आँखों में अब पहले जैसा डर नहीं था।

मुझे लगने लगा—शायद यही सही जगह है इनके लिए।

बस एक डर भीतर कहीं बैठा था—
कहीं फिर कोई गड़बड़ न हो जाए।

मैं बार-बार घरवालों से कहती,
"ध्यान रखना। खोलना मत। खाने-पीने में कमी मत करना।"

मैंने हर चीज समझाकर छोड़ी—
कब दवा देनी है।

कितना खाना देना है।
कब पानी बदलना है।

मैंने सोचा—अब सब व्यवस्थित है।

तीन दिन बाद मुझे वापस अपने घर लौटना था। बेटी छोटी थी। घर भी संभालना था। जिंदगी रुक नहीं सकती थी।

जिस दिन मैं जाने लगी, भूरी को थोड़ा ज्यादा सहलाया।

वह चैन से बंधी थी, लेकिन मुझे देखते ही पूँछ हिलाने लगी।

उसकी आँखों में वही भरोसा था—
जैसे कह रही हो, “तुम हो न?”

मेरा दिल भारी हो गया।

मैंने मन में खुद को समझाया—
यहाँ वह सुरक्षित है।
इलाज हो रहा है।
खुला माहौल है।
खाने की कमी नहीं है।

मैं बेफिक्र होना चाहती थी।

गाड़ी में बैठते समय मैंने आखिरी बार पीछे देखा। पिल्ले खेल रहे थे। भूरी बैठी मुझे देख रही थी।

मैंने सोचा—मैंने उन्हें एक अच्छी जगह दे दी। अब सब ठीक रहेगा।

और उसी भरोसे के साथ मैं वहाँ से चली गई…

लेकिन कभी-कभी हम जिस चीज़ को "ठीक" समझते हैं, वह समय के साथ कुछ और साबित होती है।

मुझे तब नहीं पता था कि यह कहानी अभी और मोड़ लेने वाली है।

मैं अपने घर तो लौट आई, लेकिन मन वहीं अटका रहता था—गाँव के उस आँगन में, जहाँ भूरी और उसके पिल्ले थे।

जगह बदल गई थी, माहौल बदल गया था। शहर की तंग गलियों से खुले खेतों तक का सफर आसान नहीं होता। मैं बार-बार सोचती—वे क्या सोच रहे होंगे? क्या उन्हें लग रहा होगा कि मैंने उन्हें छोड़ दिया? क्या भूरी मुझे ढूँढती होगी?

मैं रोज़ फोन करती। घर पर भी, और डॉक्टर को भी।

डॉक्टर से मेरी रोज़ बातचीत होती थी। वे रोज़ उसका चेकअप कर रहे थे, इंजेक्शन लगा रहे थे, दवाइयाँ दे रहे थे। मैं बार-बार एक ही सवाल पूछती—
"अब कैसी है?"
"खाना खा रही है?"
"कमज़ोरी तो नहीं बढ़ रही?"

धीरे-धीरे जवाब बदलने लगे।
"पहले से बेहतर है।"
"घाव सूख रहे हैं।"
"आज थोड़ा खेली भी।"

ये सुनकर मुझे सुकून मिलता।

घर से भी खबर मिलती—
"आज पिल्लों के साथ भाग रही थी।"

"आज धूप में बैठी थी।"

मैं सोचती—शायद खुली हवा और शांत माहौल काम कर रहा है।

लेकिन एक बात मुझे खटकती थी।

भूरी अपने पिल्लों को ज्यादा समय नहीं देती थी। वह उनसे दूर-दूर रहती। वे उसके पास जाते, तो कभी उठकर दूसरी तरफ चली जाती।

शायद उसकी बीमारी ने उसे कमजोर बना दिया था। शायद मातृत्व से ज्यादा उसे अपने शरीर की तकलीफ महसूस हो रही थी।

मुझे समझ नहीं आता था—यह दूरी बीमारी की वजह से है या उसके भीतर कोई और थकान है?

समय बीत रहा था।

फिर एक दिन खबर आई कि कुछ लोग गाँव में आए हैं और पिल्ले गोद लेना चाहते हैं।

पहले तो मैं चुप रही। मन में एक कसक उठी—क्या मैं उन्हें अपने से दूर कर दूँ?

लेकिन फिर मैंने सोचा—
अगर उन्हें अच्छा घर मिल जाए तो?
जहाँ उन्हें रोज़ खाना मिले, देखभाल मिले, खेतों में दौड़ने की जगह मिले?

जो लोग आए थे, वे हमारे परिचित थे। उनका स्वभाव हम जानते थे। भरोसेमंद लोग थे।

मैंने फोन पर लंबी बात की। पूछा—
"आप सच में पालेंगे?"

“जंजीर में तो नहीं बाँधेंगे?”
“खाना समय पर देंगे?”

उन्होंने आश्वासन दिया।

मैंने मन को समझाया—
हर पिल्ले को एक स्थायी घर मिलना चाहिए।
और भूरी की हालत अभी पूरी तरह स्थिर नहीं है।

एक-एक करके कुछ पिल्ले अपने नए घर चले गए।

जब मुझे बताया गया कि वे लोग उन्हें अपने खेतों में ले जाते हैं, खुला छोड़ते हैं, दिन-रात खाना-पानी देते हैं—तो दिल को थोड़ा संतोष हुआ।

मैंने यह भी तय किया कि क्योंकि उनके घर पास ही हैं, हम नज़र रख पाएँगे।

इस तरह पिल्लों को अलग करना आसान नहीं था।

एक माँ से उसके बच्चे दूर करना…
भले वह उनसे दूरी बना रही थी, लेकिन खून का रिश्ता तो था।

लेकिन मुझे लगा—यह उनके भविष्य के लिए बेहतर है।

उधर भूरी…

उसकी तबीयत कभी सुधरती, कभी अचानक बिगड़ जाती।

कभी वह दो-तीन दिन सामान्य रहती। खाना खाती। थोड़ी भागती भी।
फिर अचानक सुस्त पड़ जाती।
खाना छोड़ देती।
आँखें बुझी-बुझी सी हो जातीं।

डॉक्टर दवा बदलते। इंजेक्शन देते।

मैं हर कॉल पर घबराई रहती।

कई बार मुझे लगता—क्या मैंने सही किया?
क्या उसे शहर में ही किसी बड़े अस्पताल में दिखाना चाहिए था?
क्या गाँव का माहौल उसके लिए पर्याप्त है?

लेकिन फिर याद आता—शहर की सड़कें, पत्थर, खतरे…

कम से कम यहाँ शांति थी।

दिन गुजरते गए। पिल्ले अपने-अपने घरों में रमने लगे।

भूरी अब अकेली रह गई थी।

शायद यह भी उसके व्यवहार में दिखता था।

वह पहले से ज्यादा चुप रहने लगी थी।

कभी-कभी वह आँगन के उस कोने में बैठ जाती, जहाँ उसके पिल्ले खेला करते थे।

मुझे बताया जाता कि वह कभी-कभी दूर तक देखती रहती है… जैसे किसी का इंतज़ार कर रही हो।

मैं फोन पर सुनती और चुप हो जाती।

मेरे लिए यह सिर्फ सेवा नहीं रह गया था। यह भावनात्मक रिश्ता बन चुका था।

मैंने उसे सड़क से उठाया था।

मैंने उसे घर दिया।
मैंने उसके बच्चों को सुरक्षित जगह दी।

लेकिन फिर भी एक अधूरापन था।

उसकी बीमारी पूरी तरह गई नहीं थी।
वह सुधर रही थी... लेकिन पूरी तरह स्वस्थ नहीं थी।

और मुझे भीतर ही भीतर एहसास हो रहा था—
कहानी अभी पूरी नहीं हुई है।

भूरी जैसे धीरे-धीरे जीवन से लड़ रही थी।
कभी जीतती, कभी हारती।

और मैं... दूर बैठी हर दिन उसके लिए दुआ करती थी।
दिन बीतते गए। भूरी अब पूरी तरह स्वस्थ हो चुकी थी। गांव के उस घर को उसने अपना घर मान लिया था। आंगन में निडर होकर घूमती, दरवाज़े पर बैठकर राह देखती और घरवालों की आवाज़ पहचानने लगी थी। जब भी मैं दिल्ली से फोन करती, सब यही कहते—"भूरी बिल्कुल ठीक है, डॉक्टर रोज़ आकर देख जाते हैं।" यह सुनकर मेरे मन को सुकून मिल जाता।

इधर मैं भी अपने शहर में फिर से अपने कामों में व्यस्त हो गई थी। मेरी ज़िंदगी में नए-नए पिल्ले और कुत्ते आ गए थे, जिन्हें मैं घर तो नहीं दे पाई, पर रोज़ सड़क पर जाकर उन्हें खाना और पानी ज़रूर देती थी। उनकी आंखों की चमक और पूंछ हिलाने की खुशी ही मेरी ताकत बन जाती थी।

समय के साथ भूरी भी गांव के माहौल में ढल गई थी। उसके बच्चे, जिनका मैंने बड़े प्यार से एडॉप्शन करवाया था, अब अपने-अपने घरों में बड़े हो रहे थे। सब कुछ सामान्य चल रहा था। इधर मेरी भी स्थिति पहले से बेहतर थी—मैं और लोगों से जुड़ रही थी, ज़रूरतमंदों और जानवरों की मदद कर रही थी, और मुझे सेवा के नए अवसर मिल रहे थे।

फिर भी, दिन में एक बार डेली फोन करके मैं यही पूछती—"भूरी कैसी है?" उसका हाल जान लेना जैसे मेरी रोज़ की दुआ बन गया था।

भूरी बहुत सहनशील, दर्द को चुपचाप सह लेने वाली और समझदार डॉगी थी। जब वह हमसे मिली, तो उसके व्यवहार में एक अलग ही ठहराव और अनुशासन दिखाई देता था। ऐसा लगता था मानो उसे पहले से ही किसी ने अच्छे संस्कार और ट्रेनिंग दी हो। उसका चलना, बैठना, लोगों को देखना—सब कुछ बहुत सधा हुआ था। वह बिना वजह इधर-उधर भागती नहीं थी, न ही अनजान लोगों पर भौंकती थी। उसके अंदर एक अजीब-सी गरिमा थी, जैसे वह सड़क पर रहने वाली साधारण कुतिया नहीं, बल्कि किसी घर की पली-बढ़ी सदस्य हो, जो किसी कारणवश अपनों से बिछड़ गई हो।

उसका व्यवहार दूसरों के प्रति साहस से भरा हुआ था। वह बेवजह शोर मचाने वाली डॉगी नहीं थी। दिनभर भौंकना उसकी आदत में नहीं था। यदि कोई अजनबी पास आता तो वह पहले ध्यान से देखती, उसकी नीयत को परखती, फिर ही कोई प्रतिक्रिया देती। उसमें एक समझदारी थी—किससे दूरी बनानी है और किस पर भरोसा करना है, यह वह बहुत अच्छे से जानती थी। कई बार लोग उसके पास से गुजरते, बच्चे शोर करते, बाइकें तेज आवाज में निकलतीं, लेकिन वह शांत बैठी रहती। उसकी आंखों में घबराहट नहीं, बल्कि धैर्य दिखाई देता था।

मुझे हमेशा लगता था कि उसने जीवन में बहुत कुछ देखा है। शायद उसने अपनापन भी पाया होगा और धोखा भी सहा होगा। तभी तो वह तुरंत किसी के पीछे भागकर दुलार लेने की कोशिश नहीं करती थी। वह पहले दूरी बनाए रखती, जैसे खुद को बचाकर रख रही हो। लेकिन जब उसे यकीन हो जाता कि सामने वाला इंसान उसे नुकसान नहीं पहुंचाएगा, तब वह धीरे-धीरे पास आकर बैठ जाती। उसका सिर हल्का-सा झुकाना, आंखों से आभार जताना—ये सब उसके व्यक्तित्व की गहराई को दर्शाता था।

भूरी में एक और खास बात थी—वह अपने दर्द को कभी जाहिर नहीं करती थी। अगर उसे चोट भी लगी होती, तब भी वह चिल्लाती नहीं थी। बस थोड़ी देर के लिए

एक कोने में जाकर बैठ जाती, और अपनी आंखों में वही शांत भाव लिए सब कुछ सह लेती। कई बार मैंने उसके शरीर पर पुराने घावों के निशान देखे। वे निशान सिर्फ उसके शरीर पर नहीं, शायद उसके मन पर भी रहे होंगे। लेकिन उसने कभी शिकायत नहीं की। उसके अंदर एक मां जैसी सहनशीलता थी—जो खुद तकलीफ सहकर भी दूसरों को तकलीफ नहीं देना चाहती।

जब वह मां बनी, तब उसका व्यवहार और भी संवेदनशील हो गया। अपने बच्चों के लिए वह एकदम सतर्क रहती। लेकिन फिर भी वह आक्रामक नहीं होती थी। यदि कोई पास आता तो पहले चेतावनी भरी नजरों से देखती, और जरूरत पड़ने पर ही हल्का-सा भौंकती। उसमें संतुलन था—न अधिक डर, न अधिक गुस्सा। बस अपने बच्चों की सुरक्षा की जिम्मेदारी का एहसास।

मुझे उसके पास बैठना अच्छा लगता था। कई बार मैं चुपचाप उसके पास जाकर बैठ जाती, और वह भी बिना हिले-डुले मेरे साथ समय बिताती। उस खामोशी में भी एक संवाद होता था। ऐसा लगता था जैसे वह सब समझती है—मेरी चिंता, मेरा स्नेह, मेरी बेचैनी। जब मैं उसे खाना देती, तो वह कभी लालच में झपटती नहीं थी। पहले मेरी तरफ देखती, फिर धीरे-धीरे खाना शुरू करती। मानो धन्यवाद कह रही हो।

उसकी चाल में भी एक आत्मविश्वास था। सड़क पर चलते समय वह सिर ऊंचा रखती, लेकिन किसी से उलझती नहीं थी। दूसरे कुत्तों के झुंड में भी वह अलग दिखाई देती थी—शांत, संयमित और समझदार। कई बार अन्य कुत्ते आपस में लड़ पड़ते, पर भूरी उनसे दूरी बनाए रखती। उसे अनावश्यक विवाद पसंद नहीं थे। जैसे उसने जीवन से यह सीख लिया हो कि हर लड़ाई लड़ना जरूरी नहीं होता।

भूरी का स्वभाव मुझे बार-बार यही सोचने पर मजबूर करता था कि जानवर भी इंसानों की तरह अनुभवों से सीखते हैं, टूटते हैं, फिर खुद को संभालते हैं। उसके अंदर की गंभीरता यह बताती थी कि उसने कभी किसी का घर देखा है, किसी का स्नेह पाया है। शायद किसी ने उसे गोद में खिलाया होगा, किसी बच्चे ने उसके साथ खेला होगा। फिर किसी दिन परिस्थितियों ने उसे सड़क पर ला खड़ा किया। लेकिन उसने अपनी शालीनता नहीं छोड़ी।

वह जहां बैठती, वहां एक अजीब-सी शांति महसूस होती। राह चलते लोग भी कहते, "यह डॉगी बहुत समझदार लगती है।" और सच में, उसकी आंखों में एक कहानी थी—सहनशीलता की, त्याग की, और अनकहे दर्द की। वह बोल नहीं सकती थी, पर उसका व्यवहार बहुत कुछ कह देता था।

भूरी सिर्फ एक सड़क पर रहने वाली कुतिया नहीं थी। वह एक मजबूत आत्मा थी, जिसने बिना शिकायत के जीवन की कठिनाइयों को स्वीकार किया। उसका शांत रहना कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी ताकत थी। उसने सिखाया कि साहस हमेशा शोर मचाकर नहीं दिखाया जाता—कभी-कभी चुप रहकर भी सबसे बड़ी लड़ाई लड़ी जाती है।

और शायद यही वजह थी कि वह मेरे दिल के इतने करीब हो गई—क्योंकि उसके अंदर एक ऐसी गहराई थी, जिसे शब्दों में पूरी तरह बांध पाना मुश्किल है।

मेरे घर वाले मुझे बहुत अच्छे से जानते थे। उन्हें पता था कि मैं ज़रा-सी भी दुखद खबर सुनकर टूट जाती हूँ। खासकर अगर बात किसी बेज़ुबान की हो, तो मेरा दिल संभालना मुश्किल हो जाता है। शायद इसी वजह से उन्होंने मुझे यह नहीं बताया कि भूरी की तबीयत अचानक बिगड़ गई है। उन्हें डर रहा होगा कि अगर मुझे पता चल गया, तो मैं रो-रोकर अपनी तबीयत खराब कर लूँगी, और जो काम मैं कर रही हूँ, वह भी ठीक से नहीं कर पाऊँगी।

और मैं… मैं बिल्कुल अनजान थी। अपने काम में व्यस्त, यहाँ सबकी सेवा में लीन, यह सोचकर निश्चिंत कि मेरे घर वाले हैं, वे भूरी का ध्यान रख रहे होंगे। मेरे मन में बस यही विश्वास था कि डॉक्टर रोज़ देख रहे हैं, दवाइयाँ दे रहे हैं, तो जल्दी ही वह ठीक हो जाएगी। मैं बेफिक्र-सी अपने दायित्व निभा रही थी। मन में एक ही तसल्ली थी—"सब ठीक है।"

मुझे क्या पता था कि वहाँ हालात इतने सरल नहीं थे।

डेली डॉक्टर के पास ले जाया जा रहा था उसे। इंजेक्शन लग रहे थे, दवाइयाँ दी जा रही थीं, लेकिन उसकी हालत में कोई खास सुधार नहीं हो रहा था। धीरे-धीरे वह कमज़ोर होती जा रही थी। उसकी वही शांत आँखें अब और भी गहरी हो गई थीं। शरीर पहले से ज्यादा ढलता हुआ-सा दिखने लगा था। आखिरकार हालत इतनी बिगड़ गई कि उसे अस्पताल में एडमिट करना पड़ा। रोज़ उसे ड्रिप लगती थी, ग्लूकोज़ चढ़ाया जाता था, ताकि उसके शरीर में ताकत बनी रहे।
यह सब मुझे बाद में पता चला।

जब मुझे यह सच्चाई मालूम हुई, तो मेरे पैरों तले ज़मीन खिसक गई। मुझे लगा जैसे मैं उसके सबसे कठिन समय में उसके पास नहीं थी। मैं यहाँ बेफिक्र घूम रही थी, सेवा कार्यों में लगी थी, और वहाँ वह अस्पताल में ड्रिप पर थी। उस पल मेरे अंदर

अपराधबोध का सैलाब उमड़ पड़ा। बार-बार यही ख्याल आता—"काश, मुझे पहले बता दिया होता… मैं उसके पास होती… उसका सिर सहलाती… उसकी आँखों में झाँककर उसे हिम्मत देती।"

लेकिन शायद घर वालों ने गलत नहीं किया। वे मुझे बचाना चाहते थे—मेरे टूट जाने से, मेरे बीमार पड़ जाने से। वे जानते थे कि भूरी मेरे लिए सिर्फ एक डॉगी नहीं थी। वह मेरे दिल का हिस्सा थी। उसकी तकलीफ मुझे अपनी लगती थी।

उस समय मैं गाँव जाने की तैयारी में थी। महीनों के लिए जाना था। मन में एक मीठी-सी उम्मीद थी कि जाने से पहले या लौटकर हम फिर एक हो जाएँगे। मैं सोचती थी—"ठीक होकर वह फिर पहले जैसी हो जाएगी। मैं लौटूँगी तो वह मुझे देखकर पूँछ हिलाएगी, धीरे-धीरे मेरे पास आएगी, और अपनी वही शांत आँखों से मेरा स्वागत करेगी।"

मुझे इस बात का अंदाज़ा नहीं था कि जिंदगी ने हमारे लिए एक कठिन मोड़ तैयार कर रखा है।

जब बाद में मुझे बताया गया कि उसकी हालत इतनी खराब थी कि अस्पताल में भर्ती करना पड़ा, तो मेरे अंदर अजीब-सी बेचैनी फैल गई। हर वो दिन, जब मैं बेफिक्र थी, मुझे चुभने लगा। सोचती थी—वह अस्पताल के ठंडे फर्श पर लेटी होगी, उसके हाथ में सुई लगी होगी, ड्रिप टप-टप गिर रही होगी… और मैं वहाँ नहीं थी। वह शायद दरवाज़े की तरफ देखती होगी, जैसे किसी अपने का इंतज़ार कर रही हो। यह ख्याल मुझे अंदर तक तोड़ देता था।

फिर भी, एक उम्मीद थी। डॉक्टर रोज़ देख रहे थे। ड्रिप लग रही थी। इलाज चल रहा था। मैं खुद को यही समझाती रही कि सब ठीक हो जाएगा। भूरी इतनी सहनशील

थी, इतनी मजबूत थी—वह हार नहीं मानेगी। उसने पहले भी दर्द सहा था, अकेलापन झेला था। यह बीमारी भी शायद वह झेल लेगी।

मेरे मन में बार-बार हमारी पिछली मुलाकातें घूमती थीं। उसका शांत चेहरा, मेरा उसे पुकारना, उसका धीरे से मेरे पास आना। मैं सोचती—"नहीं, वह मुझे छोड़कर नहीं जाएगी। अभी हमें फिर मिलना है। अभी मुझे उससे बहुत कुछ कहना है।"

लेकिन कहीं न कहीं दिल के एक कोने में डर भी घर कर चुका था। एक अनजाना-सा भय—जो बिना शब्दों के भीतर बैठ जाता है। मैं उसे दबाने की कोशिश करती, खुद को मजबूत दिखाती, पर रात को जब अकेली होती, तो वही चिंता सामने आ खड़ी होती।

मुझे यह भी याद है, जब पहली बार अस्पताल में एडमिट होने की बात सुनी, तो मैंने तुरंत फोन किया। आवाज़ सामान्य रखने की कोशिश की, लेकिन भीतर का कंपन छिप नहीं पाया। मैंने पूछा—"अब कैसी है?" जवाब मिलता—"ठीक हो जाएगी… डॉक्टर देख रहे हैं।" हर बार यही भरोसा दिया जाता, और मैं उसी भरोसे को थामे रहती।

शायद जिंदगी में कुछ रिश्ते ऐसे होते हैं, जिनका कोई नाम नहीं होता, लेकिन उनकी गहराई बहुत ज्यादा होती है। भूरी और मेरा रिश्ता भी ऐसा ही था। वह बोल नहीं सकती थी, मैं हर समय उसके पास नहीं रह सकती थी, फिर भी हमारे बीच एक अदृश्य डोर थी। और जब वह डोर बीमारी की परीक्षा से गुजर रही थी, तब मैं दूर थी।

उस समय मुझे यह एहसास हुआ कि हम जिनसे सच्चा प्रेम करते हैं, उनके लिए हमारी चिंता कभी खत्म नहीं होती—चाहे हम कितनी भी दूर क्यों न हों। मैं गाँव जाने वाली थी, महीनों के लिए। लेकिन मेरे मन का एक हिस्सा वहीं अटका हुआ था—अस्पताल के उस कोने में, जहाँ भूरी ड्रिप पर लेटी होगी।

मैं आज भी सोचती हूँ, शायद उसने मुझे याद किया होगा। शायद उसकी आँखें किसी अपने को ढूँढती होंगी। और मैं… मैं बस यही दुआ कर रही थी कि वह जल्दी ठीक हो जाए, ताकि जब मैं लौटूँ, तो हम फिर से एक साथ बैठ सकें—बिना किसी डर के, बिना किसी अस्पताल की सुई के, सिर्फ सुकून के साथ।

मुझे तब नहीं पता था कि यह इंतज़ार मेरे धैर्य की सबसे बड़ी परीक्षा बनने वाला है।

और एक दिन… वह दिन भी आ गया, जिससे मैं हमेशा डरती थी।

सुबह का वक्त था। मैं अपने घर में बैठी थी। रोज़ की तरह उस दिन भी मेरी आदत थी कि सबसे पहले भूरी का हाल-चाल पूछूँ। मेरे मन में अब भी उम्मीद थी कि धीरे-धीरे वह ठीक हो रही होगी। उस दिन मेरी नानी से बात हो रही थी। मैंने सामान्य आवाज़ में पूछा—"भूरी कैसी है?"

नानी ने बात टाल दी। उन्होंने कुछ और पूछ लिया। मुझे थोड़ा अजीब लगा। मैंने फिर पूछा—"बताओ ना, अब कैसी है?"

कुछ क्षणों की खामोशी… फोन के उस पार जैसे शब्द अटक गए हों।

मैंने तीसरी बार पूछा, अब आवाज़ में हल्की बेचैनी थी।

तभी नानी ने धीमे स्वर में कहा—"भूरी नहीं रही…"

बस इतना ही।

उस एक वाक्य ने जैसे मेरे भीतर सब कुछ तोड़ दिया। मेरा दिल सचमुच शॉक में चला गया। कुछ पल के लिए मुझे समझ ही नहीं आया कि क्या कहूँ, क्या पूछूँ। जैसे समय वहीं थम गया हो। मेरे कानों में आवाज़ गूँज रही थी—"भूरी नहीं रही…"

और फिर पता चला कि उसे गए हुए दो दिन हो चुके थे।

दो दिन… और मुझे बताया नहीं गया। सिर्फ इसलिए कि मैं अपनी तबीयत खराब ना कर लूँ, रो-रोकर खुद को बीमार ना कर लूँ।

उस पल मुझे कुछ समझ नहीं आया। फोन हाथ में था, लेकिन शब्द साथ छोड़ चुके थे। फिर अचानक जैसे भीतर जमी हुई सारी पीड़ा फूट पड़ी। मैं फूट-फूटकर रोने लगी। मेरे आँसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे। ऐसा लग रहा था जैसे दिल का कोई हिस्सा हमेशा के लिए खाली हो गया हो।

फोन पर सब मुझे समझा रहे थे—"मत रो… खुद को संभालो…"

लेकिन कैसे संभालती?

मैं तो हर दिन यही सोचकर जी रही थी कि वह ठीक हो जाएगी। मैंने उसके लिए जितना हो सकता था, सब किया था। डॉक्टर, दवाइयाँ, अस्पताल, ड्रिप… कोई कमी नहीं छोड़ी थी। मैंने हमेशा यही चाहा था कि वह स्वस्थ हो जाए और हम फिर से एक साथ बैठें, जैसे पहले बैठा करते थे।

लेकिन वह नहीं बच सकी।

आज भी जब उस दिन को याद करती हूँ, तो दिल में एक टीस उठती है। कभी-कभी ऐसा लगता है जैसे सब मेरी वजह से हुआ। अगर मैं वहाँ होती… अगर मैं उसके पास होती… अगर मैं उसे आखिरी बार देख पाती… शायद कुछ बदल जाता।

लेकिन फिर खुद को समझाती हूँ—जाने वालों को कोई नहीं रोक सकता। जब समय पूरा हो जाता है, तो सबसे मजबूत रिश्ता भी उसे रोक नहीं पाता।

मैंने अपने मन को यह कहकर समझाया कि शायद वह नया जन्म लेकर फिर आएगी... शायद इंसान के रूप में... शायद फिर मेरे ही आसपास कहीं। यह सोच एक छोटी-सी सांत्वना बन गई।

अगले ही दिन मैं गाँव चली गई। मन भारी था, कदम बोझिल थे। जहाँ उसे दफनाया गया था, वहाँ जाकर मैं आखिरी बार उससे मिलने गई। मिट्टी के उस छोटे-से टीले को देखकर मेरी आँखें फिर भर आईं। मैं वहीं बैठ गई। बहुत देर तक कुछ नहीं बोली। बस मन ही मन उससे बात करती रही।

“मैं आ गई हूँ... माफ करना, उस दिन साथ नहीं थी...”

हवा हल्की-हल्की चल रही थी। पेड़ों की पत्तियाँ सरसराती थीं। उस शांति में मुझे उसका वही शांत चेहरा याद आ रहा था।

फिर मैं उसके बच्चों को देखने गई। जैसे ही मैंने उन्हें देखा, मेरे दिल में एक अजीब-सी भावना जागी। उनमें मुझे भूरी की झलक दिखाई दे रही थी। किसी की आँखें उसकी जैसी थीं, किसी का स्वभाव वैसा ही शांत।

उन्हें खेलते-कूदते देखकर मेरे चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आ गई। लगा जैसे भूरी पूरी तरह गई नहीं है। वह अपने बच्चों में जीवित है। उनकी साँसों में, उनकी चाल में, उनकी मासूमियत में।

बहुत अच्छा लगा यह देखकर कि वे बड़े हो रहे हैं, स्वस्थ हैं, और उनकी देखभाल भी अच्छे से हो रही है। मुझे संतोष हुआ कि भूरी की पहचान, उसका अंश, उसकी विरासत यहीं है।

पीढ़ी दर पीढ़ी…
बच्चों के बच्चे…
यही तो जीवन का क्रम है।

दुख अब भी था—इस बात का कि मैं उसके अंतिम समय में उसके साथ नहीं थी। यह पीड़ा शायद हमेशा रहेगी। लेकिन एक सुकून भी था—मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। मैंने उसके इलाज में, उसकी देखभाल में, अपने प्रेम में कोई कमी नहीं रखी।

मैंने जितना बन पड़ा, उतना किया।

कभी-कभी प्रेम का अर्थ साथ होना नहीं, बल्कि पूरी निष्ठा से प्रयास करना होता है। और मैंने वह किया था।

भूरी चली गई, लेकिन उसने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया—सहनशीलता, मौन में भी शक्ति, और यह सच्चाई कि जीवन रुकता नहीं। वह आगे बढ़ता है… नई शुरुआतों के साथ।

आज भी जब उसकी याद आती है, आँखें नम हो जाती हैं। लेकिन उसी के साथ दिल में एक हल्की-सी मुस्कान भी आ जाती है—क्योंकि वह मेरी जिंदगी का एक हिस्सा थी, है… और हमेशा रहेगी।

कुछ समय शोक में बीता। शुरू-शुरू में हर सुबह खाली लगती थी। आदत थी उसका हाल पूछने की, उसकी तरफ देखने की, उसकी मौजूदगी महसूस करने की। लेकिन धीरे-धीरे जीवन अपनी पुरानी दिनचर्या पर लौटने लगा। काम फिर शुरू हुआ, लोगों से मिलना-जुलना शुरू हुआ, सेवा कार्य चलते रहे। बाहर से सब सामान्य दिखने लगा… पर भीतर एक कोना हमेशा उसके नाम से भरा रहा।

उसी दिन से मैंने मन ही मन ठान लिया था—मुझे भूरी पर एक पुस्तक लिखनी है।

भूरी को अब तीन साल हो चुके थे, लेकिन उसकी कहानी मेरे भीतर जिंदा थी। कई बार ऐसा होता कि अचानक उसका चेहरा आँखों के सामने आ जाता—वही शांत आँखें, वही धैर्य, वही मौन साहस। मैं सोचती, क्या उसका जीवन यूँ ही मिट्टी में मिलकर रह जाए? क्या उसकी सहनशीलता, उसका प्रेम, उसका संघर्ष सिर्फ मेरी यादों तक सीमित रह जाए?

नहीं।

मुझे लगा, मुझे उसके लिए कुछ करना है।

हाँ, मैंने उसके बच्चों को अच्छे घरों में एडॉप्शन करवा दिया था। यह जानकर सुकून था कि वे सुरक्षित हैं, प्यार में पल रहे हैं। लेकिन फिर भी मन में कुछ अधूरा था। जैसे कोई जिम्मेदारी अभी बाकी हो। जैसे उसकी कहानी मुझसे आवाज़ दे रही हो—
"मुझे शब्द दो… मुझे दुनिया तक पहुँचाओ…"

भूरी सिर्फ एक डॉगी नहीं थी। वह एक अनुभव थी। एक सीख थी। उसने मुझे बदला था।

आज भी जब मैं पीछे मुड़कर देखती हूँ, तो महसूस करती हूँ कि मेरे भीतर जो दया, जो संवेदना, जो समर्पण बढ़ा—उसमें भूरी का बहुत बड़ा योगदान है। जितना प्यार मैं उसे करने लगी थी, जितनी चिंता मुझे उसकी होती थी, उतनी ही दया मेरे भीतर बाकी जीव-जंतुओं के लिए भी जाग उठी।

पहले मैं सेवा करती थी, लेकिन उसके बाद सेवा मेरे जीवन का उद्देश्य बन गई।

मेरा काम भी उसी समय से बहुत अच्छे से चलने लगा। लोग मुझसे जुड़ने लगे, भरोसा करने लगे। शायद इसलिए कि मेरे भीतर का भाव सच्चा था। भूरी ने मुझे सिखाया था कि प्रेम दिखावा नहीं होता, वह कर्म में दिखाई देता है। और वही प्रेम मैं अपने हर कार्य में उतारने लगी।

कई रातें ऐसी रहीं, जब मैं सोने जाती और उसकी याद अचानक मन में उभर आती। मैं सोचती—अगर वह मेरे जीवन में नहीं आती, तो क्या मैं आज भी इतनी ही संवेदनशील होती? क्या मैं इतनी गहराई से सेवा से जुड़ पाती?

शायद नहीं।

तीन सालों से मेरे मन में बस एक ही विचार बार-बार आता रहा—मुझे उसकी कहानी लिखनी है। सिर्फ इसलिए नहीं कि वह मेरी प्रिय थी, बल्कि इसलिए कि उसकी कहानी में एक संदेश है। सहनशीलता का, मौन शक्ति का, त्याग का।

वह बोल नहीं सकती थी, लेकिन उसने मुझे बहुत कुछ सिखा दिया।

मैं चाहती हूँ कि दुनिया जाने कि सड़क पर रहने वाले हर जीव के भीतर भी एक आत्मा होती है, एक कहानी होती है, एक भावनात्मक संसार होता है। भूरी की कहानी के माध्यम से मैं यह बताना चाहती हूँ कि प्रेम जाति, भाषा, प्रजाति नहीं देखता। वह बस महसूस किया जाता है।

कभी-कभी मैं सोचती हूँ, शायद यह पुस्तक ही उसका सच्चा स्मारक होगी। कोई पत्थर की मूर्ति नहीं, कोई नाम का बोर्ड नहीं—बस शब्दों में जीवित एक आत्मा।

और यह भी सच है कि आज मैं जो भी जरूरतमंदों के लिए सेवा कर पा रही हूँ, उसका श्रेय कहीं न कहीं भूरी को जाता है। अगर उसने मुझे भीतर से न झकझोरा होता, अगर उसकी पीड़ा ने मेरे दिल को न बदला होता, तो शायद मैं इतनी गहराई से इस रास्ते पर न आती।

मेरे हर सेवा कार्य में, हर दान अभियान में, हर बचाए गए जीवन में मुझे उसका अंश दिखाई देता है।

इसलिए मैंने तय किया—यह पुस्तक सिर्फ एक कहानी नहीं होगी, यह एक श्रद्धांजलि होगी। एक वादा होगा कि उसका जीवन व्यर्थ नहीं गया।

भूरी मेरे जीवन का एक अध्याय नहीं, एक मोड़ थी।

और अब समय आ गया है कि मैं उस मोड़ को शब्दों में ढालूँ—ताकि आने वाली पीढ़ियाँ जान सकें कि एक सड़क पर रहने वाली डॉगी भी किसी इंसान का जीवन बदल सकती है।

उसकी याद आज भी मेरे मन में उतनी ही ताज़ा है। दर्द अब शांत हो चुका है, लेकिन उसकी छाप गहरी है।

और जब भी मैं कलम उठाती हूँ, ऐसा लगता है जैसे कहीं न कहीं भूरी मुस्कुरा रही है... जैसे कह रही हो—
"अब मेरी कहानी दुनिया को बता दो।"

यह कहानी मेरी ज़िंदगी की सबसे अहम कहानी है।
क्योंकि इसमें सिर्फ मेरे जीवन का एक अध्याय नहीं, बल्कि उन मासूम आँखों की पूरी दुनिया बसती है, जिन्हें बोलना नहीं आता, पर महसूस सब कुछ होता है। इस कहानी में दर्द भी है, अपनापन भी है, संघर्ष भी है और एक ऐसी खामोश पुकार भी, जो अक्सर हमारे शोर में दब जाती है।

इसके बाद भी मेरी ज़िंदगी से जुड़ी कई कहानियाँ मैं आपके सामने लाऊँगी, क्योंकि यह सफर यहीं खत्म नहीं होता। हर मोड़ पर मुझे कोई न कोई ऐसा चेहरा मिला, जिसने मुझे इंसान होने का असली अर्थ सिखाया। कभी किसी घायल कुत्ते की काँपती देह ने, कभी भूख से बिलखते पिल्लों की आँखों ने, और कभी एक माँ डॉग की बेबसी ने मुझे भीतर तक हिला दिया। ये सिर्फ घटनाएँ नहीं थीं, ये मेरे जीवन की सीख थीं — जिन्होंने मुझे बदल दिया।

मैं चाहती हूँ कि आप इस कहानी को सिर्फ पढ़ें नहीं, बल्कि महसूस करें। एक डॉग की भावनाओं को समझने की कोशिश करें। वह किस दौर से गुजरता है, यह हम अक्सर सोचते भी नहीं। हमें सड़क पर वह सिर्फ एक जानवर दिखाई देता है, लेकिन उसके भीतर भी एक दिल धड़कता है। उसे भी दर्द होता है, उसे भी भूख लगती है, उसे भी डर लगता है, और उसे भी प्यार की जरूरत होती है। फर्क सिर्फ इतना है कि वह अपनी पीड़ा शब्दों में नहीं कह सकता।

सड़क पर रहने वाले कुत्तों की जिंदगी जितनी बाहर से साधारण दिखती है, भीतर से उतनी ही कठिन होती है। दिन भर धूप में भटकना, बारिश में भीगना, ठंड में काँपना

— यह उनकी दिनचर्या है। खाने के लिए कूड़ेदान खंगालना, लोगों की डाँट सुनना, कभी-कभी पत्थर सहना — यह उनका हिस्सा बन चुका है। कई बार लोग उन्हें भगाते हैं, मारते हैं, सिर्फ इसलिए कि वे रास्ते में आ गए। पर क्या हमने कभी सोचा है कि यह सड़क भी तो उसी पृथ्वी का हिस्सा है, जिस पर हम सबका समान अधिकार है?

सौ में से शायद पाँच को ही एक घर नसीब हो पाता है। बाकी पचानवे जिंदगी भर खुले आसमान के नीचे ही अपने दिन गिनते रहते हैं। जब कोई छोटा पिल्ला जन्म लेता है, तो उसकी माँ की आँखों में भी वही सपना होता है, जो हर माँ की आँखों में होता है — कि उसके बच्चे सुरक्षित रहें। लेकिन सड़क की हकीकत बहुत कठोर है। कई पिल्ले बीमारियों से मर जाते हैं, कई गाड़ियों के नीचे आ जाते हैं, और कई भूख से तड़पते रहते हैं। माँ डॉग सब कुछ देखती है, सहती है, पर कर कुछ नहीं पाती। उसकी बेबसी किसी भी इंसानी माँ से कम नहीं होती।

मैं खासकर सड़क पर रहने वाले कुत्तों के बारे में बोल रही हूँ, क्योंकि उनकी आवाज़ सबसे कम सुनी जाती है। पालतू डॉग्स के पास छत होती है, खाना होता है, इलाज होता है। लेकिन जो सड़क पर हैं, उनके हिस्से में संघर्ष ज्यादा है, सहारा कम। फिर भी आप गौर कीजिए — वे इंसानों से नफरत नहीं करते। कितनी बार ऐसा हुआ होगा कि किसी ने उन्हें पत्थर मारा, और कुछ देर बाद वही डॉग उसी इंसान की ओर उम्मीद से देखता है। उनके दिल में शिकायत कम और उम्मीद ज्यादा होती है।

आप उनके बारे में थोड़ा सोचिएगा। जब अगली बार आप सड़क पर किसी डॉग को देखें, तो उसे सिर्फ एक जानवर की तरह मत देखिए। उसकी आँखों में झाँकिए। वहाँ आपको एक कहानी दिखाई देगी — इंतज़ार की कहानी, अपनापन पाने की कहानी, और कभी-कभी टूटे हुए भरोसे की कहानी। हो सकता है वह कई दिनों से भूखा हो। हो सकता है उसके शरीर पर जो घाव दिख रहा है, वह किसी दुर्घटना का परिणाम हो। हो सकता है वह किसी का छोड़ा हुआ पालतू हो, जिसे अब सड़क पर जीना सीखना पड़ रहा हो।

मेरे कहानी लिखने का मकसद सिर्फ साहित्य रचना नहीं है। मेरा उद्देश्य यह है कि आपके दिल में दया का एक छोटा सा बीज बो सकूँ। दया कोई कमजोरी नहीं है, यह

इंसानियत की सबसे बड़ी ताकत है। जब हम किसी कमजोर जीव के लिए रुकते हैं, उसके लिए एक रोटी निकालते हैं, उसके लिए पानी रखते हैं, या उसकी चोट के इलाज के लिए आगे आते हैं — तब हम सिर्फ उसकी मदद नहीं करते, बल्कि खुद को भी बेहतर बनाते हैं।

मैं यह नहीं कहती कि हर कोई हर डॉग को अपने घर ले जाए। लेकिन थोड़ा सा ध्यान, थोड़ी सी संवेदनशीलता, बहुत बड़ा बदलाव ला सकती है। अगर आप रोज एक रोटी अलग रख दें, अगर आप गर्मियों में बाहर पानी का एक बर्तन रख दें, अगर आप किसी घायल डॉग को देखकर अनदेखा करने के बजाय किसी डॉक्टर या संस्था को फोन कर दें — तो आप उसके जीवन में फर्क डाल सकते हैं। कभी-कभी एक छोटी सी कोशिश किसी की पूरी जिंदगी बदल देती है।

यह पृथ्वी सिर्फ इंसानों के लिए नहीं बनी। यहाँ हर जीव का उतना ही अधिकार है, जितना हमारा। जब हम सिर्फ अपने आराम और सुविधा के बारे में सोचते हैं, तो कहीं न कहीं हम उस संतुलन को तोड़ देते हैं, जो प्रकृति ने बनाया है। अगर हम अपने भीतर करुणा को जिंदा रखें, तो यह दुनिया सच में बेहतर जगह बन सकती है।

मैंने जब-जब किसी डॉग की आँखों में देखा, मुझे वहाँ भरोसा दिखा। एक ऐसा भरोसा, जो बिना शर्त होता है। शायद यही कारण है कि मैं बार-बार उनकी कहानियाँ लिखती हूँ। क्योंकि वे बोल नहीं सकते, इसलिए मुझे उनकी आवाज़ बनना है। अगर मेरी लिखी हुई कहानी पढ़कर एक भी इंसान का दिल पिघले, अगर एक भी व्यक्ति अगली बार किसी सड़क के कुत्ते को पत्थर मारने से पहले रुक जाए, अगर कोई एक बच्चा अपने माता-पिता से पूछे कि "हम इसे थोड़ा खाना दे सकते हैं?" — तो मुझे लगेगा कि मेरी कलम बेकार नहीं गई।

यह आखिरी हिस्सा है इस कहानी का, लेकिन भावना का अंत नहीं। आगे भी मैं अपने जीवन से जुड़ी और कहानियाँ आपके सामने लाऊँगी — क्योंकि यह सफर चलता रहेगा। हर नई कहानी में कोई नया चेहरा होगा, कोई नई पीड़ा होगी, और शायद कोई नई उम्मीद भी।

मैं आपसे सिर्फ इतना चाहती हूँ — जब भी आप किसी सड़क पर रहने वाले कुत्ते को देखें, एक पल रुककर सोचिएगा। वह भी इस धरती का हिस्सा है। उसे भी जीने का अधिकार है। उसके हिस्से की थोड़ी सी दया, थोड़ी सी सुरक्षा, और थोड़ा सा प्यार — हम सब मिलकर दे सकते हैं।

अगर मेरी कहानी आपके दिल तक पहुँची है, तो इसे प्यार दीजिए। इसे सिर्फ शब्दों की तरह मत पढ़िए, इसे एक भावना की तरह स्वीकार कीजिए। क्योंकि जब दिल में दया जागती है, तभी समाज बदलता है। और जब समाज बदलता है, तभी पृथ्वी सच में एक बेहतर जगह बनती है।

यह कहानी मेरे दिल का एक सच्चा हिस्सा है,
जिसे मैं शब्दों में ढालकर आपके सामने रख रही हूँ।
अगर इन पंक्तियों में आपको करुणा की हल्की सी भी आहट सुनाई दे,
तो समझिए मेरा लिखना सफल हुआ।

मत समझो उन्हें बस राहों की धूल,
उनमें भी बसता है धड़कता हुआ उसूल।
उनकी आँखों में भी सपनों का घर होता है,
हर भूखा चेहरा भी कभी किसी का असर होता है।

पत्थर नहीं, थोड़ा सा स्नेह दे दो,
डर नहीं, बस एक सुरक्षित सेह दे दो।
वो बोल नहीं पाते, पर सब समझते हैं,
दर्द के हर मौसम को चुपचाप सहते हैं।

सिर्फ कुत्ते ही क्यों, हर जीव में जान है,
पंछी, गाय, बिल्ली — सबका समान मान है।
यह धरती सिर्फ इंसानों की जागीर नहीं,
हर सांस लेने वाले की भी तक़दीर यहीं।

आओ मिलकर दया का दीप जलाएँ,
हर प्राणी को जीने का अधिकार दिलाएँ।
जब हम प्रेम से दुनिया को देखेंगे,
तभी सच में एक बेहतर संसार लिखेंगे।

आप सभी को ढेर सारा प्यार… 🤍
करुणा ही सच्ची इंसानियत है।

— गीतांजलि उइके

धन्यवाद